उद्‌बोधन स्वयं को

[परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर १००८ श्री नानेश
के २५वें आचार्य वर्ष के पुनीत उपलक्ष्य मे]



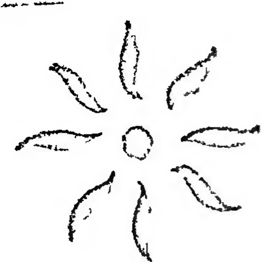
श्री शान्ति मुनि

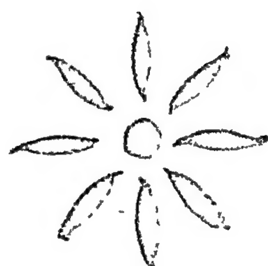


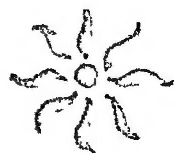
प्रकाशक :

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर



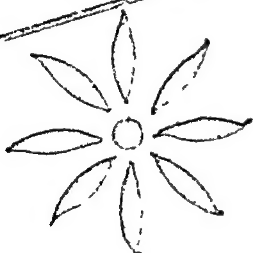


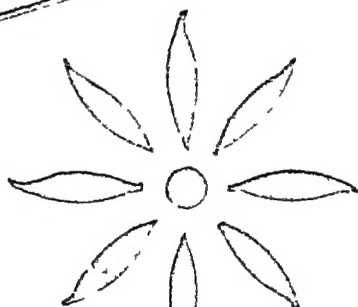


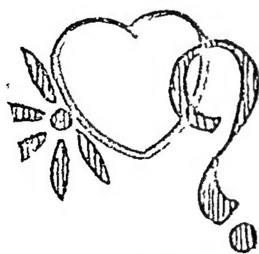


उपलब्ध स्वयं को

— शान्ति मुनि







☐ पुस्तक :

उद्‌बोधन स्वयं को

☐ उद्‌बोधक :

श्री शान्ति मुनि

☐ प्रकाशक :

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर-३३४००१ (राज.)

☐ मूल्य : ८)५० आठ रुपया पचास पैसे

☐ प्रथम संस्करण : १९८६
द्वितीय संस्करण : १९८८

☐ मुद्रक :

श्री जैन आर्ट प्रेस
समता भवन, बीकानेर-३३४००१

प्रखरतम वाग्मी

उद्भट व्याख्याता

समत्व योगी

आचार्य श्री नानेश

को

उन्हीं की अमृतदेशना

से अनुगुंजित

उद्बोधन

सविनय सश्रद्धा

समर्पित

—शान्ति मुनि

प्रकाशकीय

साधुमार्ग की इस पवित्र पावन धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए बड़े-बड़े आचार्यों ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। भगवान् महावीर के बाद अनेक बार आगमिक धरातल पर क्रांति का प्रसंग आया है। जिसका उद्देश्य श्रमण संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने का रहा। ऐसी क्रान्तिधारा में क्रियोद्धारक, महान् आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म० सा० का नाम विशेष रूप से उभर कर सामने आता है। तत्कालीन युग में जहां शिथिलाचार व्यापक तौर पर फैलता जा रहा था, शुद्ध साधुत्व की स्थिति विरल ही परिलक्षित होती थी। बड़े-बड़े साधु भी मठों की तरह उपाश्रयों में अपना स्थान जमाये हुए थे। चेलों के पीछे साधुता बिखरती जा रही था। ऐसे युग में आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म०सा० ने उपदेशों से ही नहीं अपितु अपने विशुद्ध एवं उत्कृष्ट संयममय जीवन से जनमानस को प्रभावित किया। आचार्य प्रवर केवल तपस्वी अथवा संयमी ही नहीं थे वरन् श्रमण संस्कृति के गहरे आगमिक अध्येता श्रुतधर थे। आपके जीवन का ही प्रभाव था कि हजारों स्त्री-पुरुष आपके चरण सान्निध्य को पाने के लिए लालायित रहते थे। 'तिन्नाणं तारयाणं' के आदर्श आचार्य प्रवर ने योग्य मुमुक्षुओं को दीक्षित किया और जो देशव्रती बनना चाहते थे, उन्हें देशव्रती बनाया। इस प्रकार सहज रूप से ही चतुर्विध संघ का प्रवर्तन हो गया।

समुद्र में जिस प्रकार दूर तक गंगा का पाट दिखाई देता है वैसे ही जैन धर्म के समुद्र में आचार्य प्रवर की यह धारा एक दम अलग-थलग-सी परिलक्षित होने लगी। यहां से फिर साधुमार्ग में एक क्रान्ति घटित हुई। जिस क्रान्ति की धारा पश्चात्वर्ती आचार्यों से निरन्तर आगे बढ़ी। आज हमें परम प्रसन्नता है कि समता विभूति, विद्वद् शिरोमणि, जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक, समीक्षण ध्यानयोगी आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य की हमें प्राप्ति हुई है। विशुद्ध संयम पालन के साथ-साथ आपके सान्निध्य में आपके शिष्य-शिष्या रूप साधु-साध्वी वर्ग ने सम्यक् ज्ञान-विज्ञान की दिशा में आश्चर्यजनक विकास किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ के प्रणेता विद्वद्वर्य श्री शान्ति मुनिजी आपके ही विद्वान् शिष्य हैं। आपने साहित्य की विविध विधाओं में प्रेरणादायी, जीवनोत्कर्षकारी, सत्-संस्कार वर्धक कई कृतियों का सृजन किया है।

शान्त क्रान्ति के अग्रदूत स्वर्गीय आचार्य श्री गनेशीलाल जी म०सा० की स्मृति में श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ ने रतलाम में श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार की स्थापना की। ज्ञान भण्डार में अनेकानेक प्रकाशित एवं हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह हुआ है। हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रंथों का संचयन कर उन्हें भी अ०भा० साधुमार्गी जैन साहित्य समिति सर्वजन हितार्थ प्रकाशित कर रही है। इसी संकल्प की क्रियान्विति में इस कृति को भी श्री गणेश ज्ञान भण्डार से प्राप्त कर प्रकाशित करने में संघ हार्दिक संतुष्टि का अनुभव कर रहा है।

इस कृति में विद्वद्वर्य श्री शान्ति मुनिजी के सन् १९८४ में धुलिया व बम्बई में दिये गये १० उद्बोधनों का संकलन है। कुछ उद्बोधनों के संकलन-सम्पादन में हमें धुलिया निवासी प्रबुद्ध स्वाध्यायी श्री दीपचन्दजी संचेती का सहयोग मिला है। राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर के हिन्दी प्रोफेसर डॉ नरेन्द्र भानावत ने हमारे निवेदन पर प्रस्तावना लिखने की कृपा की, हम दोनों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम संस्करण प्रकाशन में राज-नांदगांव के धर्मनिष्ठ श्रावक स्व० श्री जीवनलालजी भंवर-लालजी बैद के परिवार की ओर से हमें प्रशस्त अर्थ-सहयोग प्राप्त हुआ। संघ उनका हृदय से आभारी है। इसी पुस्तक का द्वितीय संस्करण पाठकों के हाथ मे सौपते हुए हमें प्रसन्नता है।

आशा है, यह कृति आत्म-बोध जागृत करने में प्रेरणा-दायी सिद्ध होगी।

केशरीचन्द सेठिया

संयोजक

गुमानमल चोरड़िया — सरदारमल कांकरिया

डॉ. नरेन्द्र भानावत — धनराज बेताला

सदस्यगण

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन साहित्य समिति

गणपतराज बोहरा — पीरदान पारख

अध्यक्ष — मन्त्री

अन्तदर्शन

विचार अभिव्यक्ति की विभिन्न विधाओं में उद्बोधन की विधा सर्वाधिक प्राचीन विधा रही है। चिर अतीत से तत्त्व-द्रष्टा उद्बोधन के माध्यम से ही जन-जागरण के कार्य को गति प्रदान करते रहे हैं। आगम, त्रिपिटक एवं श्रुति-स्मृति सभी उद्बोधन की ही धरोहर है। यदि तत्त्व-द्रष्टाओं ने उद्बोधन के माध्यम से अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान नहीं की होती तो आज प्राचीनतम साहित्य के रूप में उपलब्ध यह धरोहर हमारे पास कदापि नहीं होती। उद्बोधन की इस क्रमबद्ध परम्परा ने ही हमें अपने अतीत को स्मृतिसात् करने का अवसर प्रदान किया है।

यह एक अलग बात है कि आज का उद्बोधन "परोपदेशे पाण्डित्यम्" के अनुसार स्वयं के प्रति न होकर पर के प्रति ही अधिक रह गया है। हम सदा-सदा अपने से भिन्न किसी इतर व्यक्ति को ही सम्बोधित करने के अभ्यस्त हो गए हैं।

किन्तु जब साधक चित्त का निर्माण होता है तब समस्त उद्बोधन स्वकेन्द्रित हो जाता है। हम पर भाव से ऊपर उठ कर स्वयं को ही उद्बोधित करने का प्रयास करते हैं।

प्रस्तुत अभिव्यक्ति में इसी प्रकार के कुछ उद्बोधनों का संकलन है—जो समय-समय पर विचाराभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होकर संकलित होते रहे हैं। इन उद्बोधनों की शैली में प्रवचन की शैली का अनुकरण-अनुसरण है, किन्तु ये उद्बोधन अपने आप में वर्गीकृत विषयानुरूप प्रवन्ध हैं, जो अपने शीर्षक के इर्द-गिर्द ही परिक्रमा करते दिखाई पड़ते हैं।

प्रस्तुत कृति के कुछ प्रवन्धों के संकलन-सम्पादन में धुलिया निवासी स्वाध्यायशील प्रवुद्ध विचारक वन्धु श्री दीपचन्दजी संचेती का श्रम अविस्मरणीय है।

सम्भव है ये उद्बोधन हमारी स्वयं की चेतना को एक स्वस्थ दिशा प्रदान कर दें और हमारे भीतर आत्म जागरण का एक दीप जल उठे।

—शान्ति मुनि



प्रस्तावना

आज के युग की सबसे बड़ी दुखान्तिका है व्यक्ति के व्यक्तित्व का द्वैत-भाव, कथनी-करनी का अन्तर और अन्तरंग से अपरिचय। ज्ञान–विज्ञान का अप्रत्याशित द्रुतगामी विकास कर व्यक्ति ने जल, थल और नभ की नानाविध अज्ञात एवं अदृश्य शक्तियों की पहचान कायम करने मे सफलता प्राप्त की है पर आश्चर्यपूर्ण विडम्बना है कि इस आपाधापी एवं कंठछेदी प्रतिशोधात्मक होड़ में वह **'अपनी पहचान'** गंवा बैठा है।

दूसरों का परिचय प्राप्त करना अधिक कठिन नहीं, उसमें अपने अहं का पोषण होता है पर अपने आपको जानना सर्वाधिक मुश्किल होता है क्योंकि उसमे अपने अहं को छोड़ना पड़ता है। जब–जब व्यक्ति का चित्त प्रतिक्रिया करता है— अच्छी या बुरी, तब-तब वह अपने स्वभाव में नहीं होता, परभाव या विभाव मे होता है, अपने घर में नही होता, दूसरों के महल या होटल में होता है, आत्म-मूल्य में नही जीता, बाजार-मूल्य में चढता-गिरता है। इस मानसिकता में उसका अपना कोई 'खूंटा' नहीं होता, उसकी अपनी कोई जड़ नही होती, वह शाखा-प्रशाखाओं पर उछल-कूद करता रहता है।

जितने भी धर्म और दर्शन विकसित हुए हैं, उनका मूल उद्देश्य व्यक्ति को अपने स्वभाव से परिचित कराना है। स्वभाव याने उसकी अनन्त शक्ति का अनुभव। इस अनन्त शक्ति का साक्षात्कार अपने कर्तृत्व और पुरुषार्थ को जाग्रत कर ही किया जा सकता है। यह जागृति स्व-सम्मुखता से ही सम्भव है। इसमें शोर नहीं मौन आवश्यक है, उत्तेजना नही, सवेदना अपेक्षित है, अध्ययन नही स्वाध्याय अपरिहार्य है। आज अध्ययन के तौर-तरीके इस हद तक विकसित हो गये हैं कि उन्होंने स्वाध्याय की कला को ही निर्वासित कर दिया है। इसीलिए ज्ञान का इतना विस्फोट होने पर भी शांति नहीं है, प्रेम नही है, सहिष्णुता नहीं है। ज्ञान जब तक दूसरों को उपदेश देने के लिए रहेगा तब तक वह मकड़ी के जाले की स्थिति से ऊपर उठेगा नही। जब ज्ञान अन्तर्मुखी होगा, मधुमक्खी की तरह अलग-अलग नाम-रूप संसार के फूलों से पराग ग्रहण कर उन्हें अभेद रसमय दृष्टि प्रदान करेगा, तभी वह प्राणी मात्र के प्रति मैत्री सम्बन्ध जोड़ सकेगा। भगवान् महावीर की यही जीवन-दृष्टि थी। इसीलिए ज्ञानी होने का सार अहिंसक होना कहा है।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानेश के विद्वान् सुशिष्य पंडित रत्न श्री शांति मुनिजी बहुआयामी प्रतिभा के धनी है। उनमें कारयत्री एवं भावयत्री प्रतिभा का अनूठा संगम है। वे सहृदय कथाकार, सवेदनशील कवि, मधुर गीतकार होने के साथ-साथ तत्त्वदर्शी आगमवेत्ता, ओजस्वी वक्ता, अध्यात्म-वादी समीक्षक और आत्मानुलक्षी विवेचक हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'उद्बोधन स्वयं को' मुनिश्री के आत्म-

स्पर्शी १० उद्‌बोधनों का संकलन है। प्रत्येक उद्‌बोधन के प्रारम्भ में मुनिश्री द्वारा उच्चरित गीतिका में उद्‌बोधन विशेष का केन्द्रीय भाव बड़े सहज सरल रूप में अभिव्यंजित हुआ है। मुनिश्री का प्रत्येक उद्‌बोधन आध्यात्मिक अनुभूति से प्रेरित है और उसके विषय-विवेचन में आधुनिक समाज विज्ञान, मनोविज्ञान, इतिहास, पुराण, लोकानुभव आदि सब का समावेश है। यथाप्रसंग छोटे छोटे दृष्टान्त, रूपक, सुभाषित, घटना-क्रम उद्‌बोधन को सरस ही नहीं बनाते वरन् उद्‌बोधन में निहित मूल संवेदना की प्रेरक गूंज अन्तर तक छोड़ जाते है।

मुझे पूरा विश्वास है, यह कृति आत्म-जागृति एवं व्यक्ति को अपनी पहचान कराने में उद्‌बोधक सिद्ध होगी।

—डॉ. नरेन्द्र भानावत



जितने भी धर्म और दर्शन विकसित हुए हैं, उनका मूल उद्देश्य व्यक्ति को अपने स्वभाव से परिचित कराना है। स्वभाव याने उसकी अनन्त शक्ति का अनुभव। इस अनन्त शक्ति का साक्षात्कार अपने कर्तृत्व और पुरुषार्थ को जाग्रत कर ही किया जा सकता है। यह जागृति स्व-सम्मुखता से ही सम्भव है। इसमें शोर नहीं मौन आवश्यक है, उत्तेजना नहीं, सवेदना अपेक्षित है, अध्ययन नही स्वाध्याय अपरिहार्य है। आज अध्ययन के तौर-तरीके इस हद तक विकसित हो गये है कि उन्होंनें स्वाध्याय की कला को ही निर्वासित कर दिया है। इसीलिए ज्ञान का इतना विस्फोट होने पर भी शांति नहीं है, प्रेम नहीं है, सहिष्णुता नहीं है। ज्ञान जब तक दूसरों को उपदेश देने के लिए रहेगा तब तक वह मकड़ी के जाले की स्थिति से ऊपर उठेगा नही। जब ज्ञान अन्तर्मुखी होगा, मधुमक्खी की तरह अलग-अलग नाम-रूप संसार के फूलों से पराग ग्रहण कर उन्हें अभेद रसमय दृष्टि प्रदान करेगा, तभी वह प्राणी मात्र के प्रति मैत्री सम्बन्ध जोड़ सकेगा। भगवान् महावीर की यही जीवन-दृष्टि थी। इसीलिए ज्ञानी होने का सार अहिंसक होना कहा है।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानेश के विद्वान् सुशिष्य पंडित रत्न श्री शांति मुनिजी बहुआयामी प्रतिभा के धनी है। उनमें कारयत्री एवं भावयत्री प्रतिभा का अनूठा संगम है। वे सहृदय कथाकार, सवेदनशील कवि, मधुर गीतकार होने के साथ-साथ तत्त्वदर्शी आगमवेत्ता, ओजस्वी वक्ता, अध्यात्म-वादी समीक्षक और आत्मानुलक्षी विवेचक है।

प्रस्तुत पुस्तक 'उद्‌बोधन स्वयं को' मुनिश्री के आत्म-

स्पर्शी १० उद्बोधनों का संकलन है। प्रत्येक उद्बोधन के प्रारम्भ में मुनिश्री द्वारा उच्चरित गीतिका में उद्बोधन विशेष का केन्द्रीय भाव बड़े सहज सरल रूप में अभिव्यंजित हुआ है। मुनिश्री का प्रत्येक उद्बोधन आध्यात्मिक अनुभूति से प्रेरित है और उसके विषय-विवेचन में आधुनिक समाज विज्ञान, मनोविज्ञान, इतिहास, पुराण, लोकानुभव आदि सब का समावेश है। यथाप्रसंग छोटे छोटे दृष्टान्त, रूपक, सुभाषित, घटना-क्रम उद्बोधन को सरस ही नहीं बनाते वरन् उद्बोधन में निहित मूल संवेदना की प्रेरक गूंज अन्तर तक छोड़ जाते है।

मुझे पूरा विश्वास है, यह कृति आत्म-जागृति एवं व्यक्ति को अपनी पहचान कराने में उद्बोधक सिद्ध होगी।

—डॉ. नरेन्द्र भानावत



प्रथम संस्करण के अर्थ-सहयोगी—

स्वर्गीय श्री भंवरलालजी बैद

हरेक जीवन की कहानी एक–सी नहीं होती। कहां से शुरू होती है कहानी यह जानना तो है बहुत आसान लेकिन किस मुकाम पर यह समाप्त होगी और क्या शेष रह जायेगा उसके बाद, यह जानने की कोशिश ही मनुष्य के व्यक्तित्व को मुखरित कर सकती है, उसे गगन की ऊंचाइयों तक पहुँचा सकती है। जीवन के सही मायने को तटस्थता पूर्वक समझकर, उसकी उपयोगिता का सही विचार कर, आत्मचिंतन करते हुए जिन्होंने सहज ही मुखरित कर लिया था अपने व्यक्तित्व को, उस व्यक्ति का नाम है—भंवरलालजी बैद।

अब नही है वे परिजनों के बीच, लेकिन शेष है उनके उसी व्यक्तित्व का प्रेरणास्पद स्मरण, भक्तिप्रियता, सहज स्वभाव और मिलनसारिता की मिसाल। स्व. भंवरलालजी राजनांदगांव (म. प्र.) निवासी सुश्रावक जीवनचन्दजी बैद के वरिष्ठ सुपुत्र थे। घर, परिवार के आत्मीय संस्कार व माता-पिता की धर्म प्रेरित पारंपरिक निष्ठा ने उन्हें सहज ही प्रभु-भक्ति की ओर मोड़ दिया था।

रचना की उन्होंने स्वयं भक्ति गीतों की। उन्हें स्वर भी दिया जिसे आज भी गुनगुनाते और गाते हैं, भक्ति के रसिक

युवक, वयस्क और बालक भी। बुजुर्गों के बड़े प्रिय पात्र थे भंवरलालजी। युवकों के अनन्य सहयोगी, बच्चों के प्रिय "भैया" और अन्य सभी के स्नेही। ऐसे व्यक्तित्व की पुण्य स्मृति में प्रकाशित यह पुस्तक मानव मात्र को जीवन व जगत् के प्रति सही दृष्टिकोण को विकसित कराने व आत्म साधना की ओर प्रेरित करने में सहायक बने। यही मंगल-कामना है।



उद्‌बोधन-क्रम



१

अपना घर !!!

अपनी अंतरात्मा ही ईश्वर है, हम ईश्वर को बाहर में खोजने का प्रयास कर रहे है, कहा गया है—

तू तो अपना देव स्वय है, भटके कहा कहां रे चेतन ॥
तू ही तो अपना ईश्वर है, वीतराग गुण धारी,
ज्ञाता द्रष्टा वनकर लख ले, तू महिमा आगारी ॥ तू तो ॥
शिव शंकर ब्रह्मा जिन तू है निराकार वरनाणी,
कर्मो का ही भेद वना है, देख जरा सुज्ञानी ॥ तू तो ॥
सम्यग्दर्शन से भटका तू पर द्रव्यो में उलझा,
स्व पर का अव भेद समझ कर आत्म गुत्थी सुलझा ॥ तू तो ॥
राग द्वेप हैं दुर्जय शत्रु भेद डालने वाले,
सम संवेगादिक धारण कर, परम "शाति" पद पाले ॥ तू तो ॥

उद्‌बोधन स्वयं को :

गीतिका की उपरोक्त पंक्तियो में चैतन्य देव को सबोधित किया गया है। अध्यात्म क्षेत्र की साधना में 'स्व' को संवोधन करना सवसे कठिन है। वह हमेशा दूसरो को सुनाते

हैं, लेकिन कभी एकान्त में बैठ कर स्वयं को नहीं सुना पाते। दूसरों को जगाते है, लेकिन स्वय को नही जगा पाते। समस्त साधना का उद्देश्य है स्वयं को संबोधित करना–जगाना। समस्त ध्यान स्वय की चेतना पर केन्द्रित हो। दुनिया की निरर्थक चर्चा छोड़ें। स्वयं को देखें। हम पराई चर्चा में रस लेते चले आ रहे है। हम स्वयं के भीतर में झांककर नही देखते कि हमारे भीतर भी कितना सत्य और आनन्द का प्रवाह बह रहा है। हम उसे देख नही पाते। हमारा ध्यान उधर नहीं जाता। हमारा जीवन अनन्त सभावनाओं का एवं अनन्त रहस्यों का केन्द्र है। किन्तु जीवन को हम समझ नहीं पा रहे हैं।

जीवन : एक सात मंजिला मकान :

वर्तमान मनोविज्ञान हमारे जीवन को Seven Stories Life कहता है। सात मंजिल वाला मकान मानता है। हम बीच की मंजिल में हैं। तीन मंजिल ऊपर हैं, तीन मंजिल नीचे। हम ऊपर झांकते है न नीचे। ऊपर क्या रहस्य है, नीचे क्या रहस्य है। हम पहचान नहीं सके। मनोविज्ञान की दृष्टि से योग साधना में ७ प्रकार के चक्र माने गये है। विज्ञान ने सात मस्तिष्क की कल्पना की है। मनोवैज्ञानिक फ्रायड एव युंग के अनुसार कॉन्सियस माइंड, अनकॉन्सियस माइंड, सब-कॉनसियस माइंड, कलेक्टिव कॉन्सियस माइंड आदि सात प्रकार के मस्तिष्क माने गये है। चेतन मन, अचेतन मन, अवचेतन मन आदि उसके नाम है। हम एक ही स्थिति में जी रहे हैं। जीवन में बड़ी शक्ति के प्रवाह बह रहे है। लेकिन भीतर की शक्ति की तरफ हमारा ध्यान नही

जाता । हम बाहर ही उस शक्ति को टटोल रहे हैं । संक्षेप में कहूं तो वर्षो से हम जिस मकान में रहते है, उस मकान को ही पूरी तरह से नही जान पाये है । पराये घर की ओर आखें लगाये वैठे है ।

अनन्त तीर्थंकरो की साधना का परिपाक जो वीतराग दर्शन हमे प्राप्त हुआ है, महान् प्रभावशाली नवकार मत्र हमें प्राप्त हुआ, उस पर हमारी कितनी आस्था है ? कितनी श्रद्धा है ? आप लोग मानते तो है कि नवकार मंत्र मे महान् शक्ति है । चौदह पूर्व का ज्ञान भरा है । नवकार मंत्र के उपासक की मेवा में कितनेक देवता भी रहते है । आप मानते है । सिर्फ मानते है । लेकिन इस मान्यता में आपकी आस्था कितनी है ? आप सकटो से घिर जाते है, परेशानियों में उलझते है तव भैरू, भवानी, दुर्गा, शनि देव आदि की शरण लेते है । अमूल्य निधि आपके घर में है, पैरो के नीचे ही खजाना भरा पड़ा है फिर भी आप भिखारी वनकर दर दर की ठोकरें खाते भटक रहे हैं । इसके दो कारण है—आस्था का अभाव, अंतरग से अपरिचय ।

विचारों का प्रभाव :

मत्रो से ध्वनि तरगें पैदा होती है । ध्वनि तरंगों में ऊर्जा है, शक्ति है । ध्वनि तरगे वायु मण्डल को प्रभावित करती है । जैन शास्त्रों में उल्लेख आता है । पंच महाव्रतधारी साधु यदि किसी घने जगल को पार करते हों, चारो तरफ बडे बड़े सघन वृक्ष हो तो वृक्षों को देखकर वे कदापि ऐसा न बोले कि 'यह वृक्ष बडा है, इसे काटो तो पटिया अच्छी निकलेगी, खभे अच्छे बनेंगे ।' वोलना तो दूर रहा, ऐसी कल्पना भी न

करें। इससे वृक्ष को पीड़ा होती है। यह मन का विवेक है। मन और वचन मे जो तरगे उठेंगी, उसको प्रतिक्रिया वृक्ष पर अवश्य होगी। और यदि बोलना हो तो मुनि बोल सकते है कि यह वृक्ष छायादार है, फलो से लदा है, पथिकों को शांति प्रदान करने वाला है। एकेंद्रिय जीवो का भी मनो-विज्ञान जैन दर्शन ने जितनी सूक्ष्मता से विशद रूप से किया है, उतना किसी भी अन्य दर्शन ने नहीं किया। विज्ञान भी इसे मान्यता दे रहा है।

वैज्ञानिक प्रयोग—वनस्पति के सन्दर्भ में :

अभी अमेरिका में एक वैज्ञानिक प्रयोग हुआ। एक कमरे में दो गमले रखे गये। बारी बारी से एक एक ऐसे पांच व्यक्ति कमरे में छोड़े गये। उन्हें हिदायत दी गयी कि कमरे में जाकर वे सिर्फ दोनों गमलों को दूरी से देखकर लौट आवें। इस तरह पाचो के लौट आने के पश्चात् छठे को कहा गया कि तुम अन्दर जाकर एक गमले के पौधे को तोड़ मोड़ उखाड़ फेंको। उसने वैसा ही किया। एक घण्टे के पश्चात् पाचों को अन्दर भेजा गया। उस दूसरे पौधे को विजली के तारों के माध्यम से एक आलेख सयत्र मे जोडा गया और क्रमशः पांचों व्यक्ति अन्दर गए किन्तु कोई आलेख प्राप्त न हुआ। वे पांचों बाहर आ गये। फिर छठे आदमी—जिसने पौधा उखाड़ फेंका था को अन्दर भेजा गया। उसके कमरे मे प्रवेश करते हो संयंत्र पर आलेख प्राप्त हुआ। उस आलेख को पढ़ा गया। पौधे में भयंकर स्थित्यंतर हुए थे। मेरे पडौसी पौधे को इस व्यक्ति ने जीवन रहित किया। यह हत्यारा है। कही यह मुझे भी जीवन रहित न कर दे। इन भावनाओ से, भय के मारे

वह पौधा धूज उठा। उसका पत्ता-पत्ता थर्रा उठा। वह भय से प्रकंपित था। वैज्ञानिको ने सिद्धान्त निकाला—वनस्पति में भी भय है, सज्ञा है, जीने की अभिलाषा है, हर्ष है, विषाद है। जो सिद्धान्त तीर्थंकरो ने हजारो वर्ष पूर्व प्रतिपादित किये, उनको कुछ अंश मे विज्ञान अब महसूस करने लगा है। एक हम है जो हमारे ही दर्शन मे अपरिचित होते जा रहे है।

महामन्त्र-अबूझ प्रभाव :

नवकार मंत्र एवं विचार तरंगों का प्रभाव बताने वाली एक साक्षात घटना है। गुजरात में उका भगत रहता था, जो मान्त्रिक था, ज्योतिषी था और सत्यवादी था। वह भविष्य का कथन करता था इसलिए भविष्य जानने वालों की भीड उसके मकान के सामने लगी रहती थी। रास्ते मे भीड थी, एक भाई श्रीकान्त अपने मित्र दिव्यकान्त की बरात में जाने हेतु घर से निकले। वे स्टेशन पर जाने वाले थे। भीड में से बाहर निकलने की गुंजाइश नही थी। उका भगत ने आवाज लगायी "भाइयो दूर हट जाओ, रास्ता दो, यह भाई अपने मित्र की अर्थी में जा रहे है।"

श्रीकान्त भीड मे बाहर तो आ गया लेकिन क्रोध से भर उठा था। मित्र के घर पहुचा। मित्र का अचानक देहान्त हो गया था। विवाह की बारात अर्थी की वारात बन गयी। श्रीकान्त उस उका भगत से मिलने के लिए बेताब बना हुआ उका भगत के चरणो में पडा और कहा "आपको यह ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? मै भी यह विद्या सीखना चाहता हू।" उका भगत ने कहा—यह साधना तुम्हारे लिए कठिन है। इस साधना मे तुम टिक नही पाओगे। श्रीकान्त के अत्याग्रह और

अनुनय पर उका भगत ने साधना का रहस्य बताया। श्रीकान्त, अमावस के दिन रात के 8 बजे तुम श्मशान भूमि में जाकर ध्यानस्थ बैठो। रात के 12 बजे एक डरावनी आवाज आयेगी। डरना नहीं। 1 बजे मनोहारिणी आवाज आयेगी। उसमें उलझना नहीं। रात 2 बजे एक दैवी (देवता की) आवाज आयेगी "कुछ मांग लो।" कुछ मांगना नहीं। देव आग्रह करे तो कह देना "पहले आप मेरे सामने प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो जाइये, फिर मुझे जो कुछ देना हो दे देना। जब देव सामने आ जाये तो भविष्य ज्ञान की विद्या मांग लेना।

इन बातों का पालन करना। सम्भव है, तुम्हें वह विद्या प्राप्त हो जाये।"

नवकार मन्त्र और दैविक शक्ति :

श्रीकान्त श्मशान में गया। ठीक उसी प्रकार क्रमवार घटनायें घटी। देवता की आवाज आयी। श्रीकान्त ने कहा कि मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दो। देव मौन हो गया। वाद में देव ने बताया—"श्रीकान्त तुम नवकार मंत्र के उपासना हो। यदि तुम वादा करो कि नवकार मंत्र की उपासक छोड़ दूंगा, तो तुम्हे यह विद्या प्राप्त हो सकती है। मैं प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने प्रकट नही हो सकता। क्योंकि नवकार मंत्र के प्रभाव से तुम्हारे इर्द-गिर्द जो आभामण्डल है, उसमें प्रवेश करने की मेरी शक्ति नहीं है। तुम यह उपासना छोड़ दो।"

श्रीकान्त विचार करता है कि यदि नवकार मंत्र में इतनी शक्ति हैं कि देव भी मेरे पास आ नही सकते। दैवी शक्ति मे भी इस मंत्र की शक्ति ज्यादा है, तो इसे क्यों छोड़ूं ?

उसने देव से कहा, आप जाना चाहें तो जा सकते हैं । मैं महामत्र को उपासना नही छोड़ सकता । देव चला गया, सुबह हुई, उसके आसपास की भूमि सुगधित सुवासित हो गयी । उसकी दृढ़ता पर देवताओ ने प्रसन्न होकर यह वर्षा की थी । यह है महामत्र की ध्वनि तरगों का और आभामंडल का प्रभाव ।

राम कृष्ण आदि देवताओ की तस्वीरे हम देखते है । तस्वीरो में हरेक देव के पीछे एक तेजस्वी वर्तुलाकर आभा-मण्डल का वलय दिखाया जाता है । यह इसी शक्ति का द्योतक है । सिर्फ देवताओ के ही नही अपितु हरेक व्यक्ति के आस पास उसका आभामण्डल होता है और वह वायुमण्डल को प्रभावित करता है। हमारी भावनाओ का विकास-फैलाव होता है उन तरगो में और उन तरगो से आभामण्डल बनता है । व्यक्ति क्रोधी होगा, अहकारी होगा, कामुक होगा, सयमी होगा, उसकी प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न रगो का आभामण्डल बनता है और वैसा ही परिणाम देता है । किन्तु आपकी आस्था स्थिर नही है। अत. आभामण्डल का प्रभाव आप समझ नही पाते ।

आपकी आस्था :

एक श्रावक ने मुझे एक निमन्त्रण पत्रिका बताई । पत्रिका का आशय यूं था—"श्री महावीर भगवान की कृपा से हमारे यहाँ वास्तुशाँति एवं नूतन गृह प्रवेश के निमित्त होने वाले सत्यनारायण महापूजा के तीर्थ प्रसाद के लिए पधारिये ।" ओ जैनी कहाने वालो, कहाँ है आपकी आस्था ।

भगवान महावीर की कृपा से आप मकान बनवाना चाहते हैं। वास्तुशाँति के लिए सत्यनारायण की शरण लेनी पड़ती है तुम्हें ! लोभ, लालच और भौतिक सुखों के पीछे वीतराग दर्शन को भी दॉव पर लगा दिया है आपने। जैन कुल में जन्म लिया है आपने। वर्षो से महान् आचार्यो की देशना सुनते आ रहे है आप ! क्या परिणाम निकला ? कहाँ है आपकी आस्था ? कितनी उथली, थोथी और नकली हो गयी है, उसका भी आपको भान नही, अहसास नही।

देखे अपने घर की ओर :

इसीलिए कहता हूं कि आप अपने घर की तरफ नही, पराये घर की तरफ देख रहे है। वीतराग दर्शन हमारा दर्शन है। उसकी उपेक्षा कर हम पराये घर—पराये दर्शन पर आस्था रखते बहे जा रहे है। आप चाहते है शाँति और आनन्द। लेकिन आपका व्यवहार और आचरण विरुद्ध दिशा में आपको ले जा रहा है। पूर्व की तरफ जाना हो तो पश्चिम के रास्ते पर कदम रख कर कैसे पहुचोगे ? वीतराग दर्शन और नवकार मन्त्र हमें बपौती मे मिले है। उस पूंजी की उपेक्षा कर हम उम्र व्यर्थ में लुटा रहे है। आपकी स्थिति उस यात्री के समान है। एक यात्री जलगॉव स्टेशन पर ट्रेन में बैठा। ट्रेन भुसावल स्टेशन पर आयी। वह रोने लगा। कलकत्ता पहुचे तब तक रोता रहा। कलकत्ते में ट्रेन से उतरना जरूरी था। आखरी स्टेशन जो था। अन्य यात्रियो ने पूछा तो उसने बताया कि उसे बम्बई जाना था और ट्रेन थी कलकत्ता जाने वाली। अब रोऊ नही तो क्या करू ? आप उस यात्री पर हस रहे है। यदि उसे भुसावल में ही

मालूम हो गया था तो वेहतर था कि भुसावल में उतर कर बम्बई की गाड़ी में बैठ जाता । गलतियाँ होती है। लेकिन जब जाग गये तब से भी नही सभले तो जीवन एक भार मात्र रह जायेगा । कही आप भी ऐसी विपरीत दिशा में जाने वाली गाड़ी मे तो नही बैठे है ? इसलिए आपके जीवन मे सघर्ष है, तनाव है, अशान्ति है, अतृप्ति है ।

युवक और उद्देश्य :

जैसे आप हैं वैसे ही ढाँचे में आप अपनी सन्तान को भी ढालना चाहते है। किसी छात्र से पूछो, क्या कर रहे हो? जबाव मिलेगा, बी० ए० कर रहा हूं । डॉक्टरी करूगा । क्या करोगे ? प्रैक्टिस करूगा, मोटर लूंगा, बगला बनाऊगा, विवाह करूंगा, वाल वच्चो की अमेरिका मे पढ़ाई कराऊगा । जीवन के आनन्द और शाति की कल्पना हमने भौतिक सुखों के और अर्थोपार्जन के सीमित दायरे में बदिश कर दी है। यही है आपका विश्व । कितनी बौनी, ठिगनी, सकुचित है आपकी आकॉक्षा । यदि आपके बच्चे आत्मिक आनन्द के रास्ते जाना भी चाहेगे, आप जाने नही देगे । आप अपने विचार उन पर लादेगे, उनकी टॉग खीचेगे। एक आदमी नदी किनारे खुली वाल्टी मे केकड़े पकड़ रहा था। दूसरे ने पूछा— भाई खुली वाल्टी में केकडे रहेगे कैसे ? हसकर उसने कहा – "ये राजनीतिज्ञ केकड़े है। कोई आगे बढना चाहेगा तो दूसरे उसकी टॉग पकड़कर पीछे खीचेगे ।" ऐसी ही स्थिति आपकी है ।

अभी-अभी महासती जी प्रमोद सुधा जी म. सा. ने आपको अपनी प्रभावी वाणी मे बताया कि जीवन के क्षण

कैसे निरर्थक बरबाप हो रहे हैं। आचारॉंग में यही बात बताई गयी है।

पण्डित : एक परिभाषा :

खणं जाणाहि पण्डिए। 2–1–70

वही आत्मा पण्डित पद का धारक है, जो कि जीवन के शुभ अवसर के रहस्य जान लेता है। दुर्लभ और अमूल्य क्षणों को पहचानता है, भोगों और विषयो में आसक्त न होते हुए, साधना में लीन हो जाता है।

एक ग्रामीण को लाख रुपयों का हीरा मिला। बेचारे को उसका उपयोग और मूल्य मालूम नही। उस पत्थर को चटनी पीसने के काम में लेता रहा। हम उस ग्रामीण के माफिक न बने। हमें हीरे के समान यह जीवन मिला है। हम भी इसे चटनी बांटने के काम में नही लगा रहे हैं? उस हीरे को अधिक चमकायें, प्रकाशमान करें और इसका मूल्य बढ़ायें।

जैन दर्शन के सकेतों को ग्रहण करें। जैन दर्शन पर दृढ़ आस्था रखें। नवकार मंत्र हमारी आधार शिला है। उसकी शक्ति, प्रभाव और उपासना पर मनन करें, चिन्तन करें, आचरण करें। इसी में हमारी आत्मा का कल्याण है।

आपके जीवन के क्षण सार्थक बनें, इन्हीं मंगल कामनाओं के साथ—

धूलिया
२९ अप्रेल, ८४



२

स्नेह के संकल्प और पशु की क्रूरता

जागो जागो अय चेतनवा अब मोह नीद को त्यागो ।।टेर।।
मोह नीद में सोये सोये, काल अनन्त गंवाया ।
महा पुण्य का उदय हुआ है, सुन्दर तन मन पाया ।।१।।
अवसर चूक जायगा यों ही, गफलत में यदि प्राणी ।
अन्त समय पछताना होगा, कहती श्री जिनवाणी ।।२।।
जिस तन में तू मुग्ध बना है, वह बादल की छाया ।
क्षण भर में यह राख बनेगी, कंचन जैसी काया ।।३।।
मात, तात, सुत, भगिनी, वधु, सब मतलब के है साथी ।
काल बली के आ जाने पर, प्रिया खडी रह जाती ।।४।।
धन दौलत भी साथ न देगा पड़ा यही रह जाए ।
हाथ पसारे जाना होगा, कर्म ही संग निभाए ।।५।।
मोह ममता की त्याग के निदिया, जाग जाग चेतनवा ।
सत संगत मे बैठ के कर ले, अपना पावन मनवा ।।६।।
सच्चे मित्र धर्म गुरु तेरे, चरण थाम ले चेतन ।
अजर अमर पद को पालेगा, बनजा "शांति" निकेतन ।।७।।

गीत की पंक्तियों में स्वयं के चैतन्य को सम्बोधित किया गया है। जागरण का सम्बोधन दो प्रकार का होता है। एक सम्बोधन में हम अपने से भिन्न किसी व्यक्ति को सम्बोधित करते है। इस सम्बोधन को हम पर उपदेश कहते है।

सम्बोधन-स्वयं को :

लेकिन दूसरा सम्बोधन है जो स्वय के प्रति होता है- जिसमें स्वयं को सम्बोधित किया जाता है। आज अधिकांशतया पर सम्बोधन के प्रति हम सक्रिय है, सजग है, स्व सम्बोधन के प्रति हमारा लक्ष्य केन्द्रित नहीं होता, जिसे हम नीतिकारों की भाषा में कहते है—"परोपदेशे पांडित्यं"। यह सब पर सम्बोधन के अन्तर्गत है। हमारा अभ्यास दूसरे को जगाने का हो गया है। हम प्रयास करते हैं दूसरे को जगाने का। हम दूसरे को आवाज देने का प्रयास करते हैं। लेकिन स्वय को जगाने का, स्वयं को समझाने का, स्वय को आवाज देने का प्रयास हमारा नहीं बन पाता है और इस स्थिति में हम साधना नही कर सकते। साधना का मूल है—हमारी समस्त विचारणाए पूर्णतया स्वयं पर केन्द्रित हों। वहां हम पर भाव को विस्मृत कर जायें। अच्छा और बुरा जो कुछ चिन्तन हो, वह स्वभाव का चितन हो, अपना ही चितन हो। लेकिन ऐसा प्रायः होता नही है। हमारा अधिकॉश चिन्तन पर सापेक्ष है, पर भावों पर केन्द्रित है और इस कारण हम साधना में प्रवेश नहीं कर पा रहे है। हम आज प्राय. साधना का बाह्य रूप ले कर चल रहे है। सामायिक करना है, पौषध, व्रत, उपवास करना है। साधना का जो-जो रूप बाहर में दिखाई दे रहा है, वह सब क्रियात्मक रूप साधना

का बहिरंग है। साधना अंतरंग होती है, स्वयं पर केन्द्रित होना साधना है। साधना में पर भाव तिरोहित हो जाता है, वहां स्व और पर के भेद समाप्त हो जाते हैं। केवल स्व ही स्व बच रहता है। जैसा कि कबीरदासजी ने कहा "प्रेम गली अति साकड़ी तामे दो न समाय।" प्रेम की गली ऐसी संकडी है कि उसमें दो नही समाते। परमात्मा के प्रति प्रेम है तो वहां मै और परमात्मा दो नहीं रह सकते। यानी स्व और पर का भाव नही रहना चाहिए। परमात्मा ही परमात्मा है या तू ही तू है। बात जरा समझने की है कि हम जितनी साधना कर रहे है उस साधना में हमारा स्वयं पर कितना चिन्तन जाग्रत है। उस पर हम थोडा विचार करे अन्यथा हम साधना करते-करते वर्षो व्यतीत कर देते है। युग पर युग व्यतीत हो जाते हैं, लेकिन हमारा ध्यान स्वय पर केन्द्रित नही हो पाता।

भगवान महावीर की साधना,अनत तीर्थंकरों की साधना एक सी है। साधना से ध्यान स्वय पर केन्द्रित हो जाता है। पर भाव से अलग हटे, विभाव से ऊपर उठे और जहाँ हमारी चित्त वृत्तियाँ स्वय पर केन्द्रित होती हें, हम स्वय का अन्वेषण करेंगे, हमारे भीतर में रही हुई ऊर्जा सक्रिय हो जायेगी और हम अनन्त आनन्द के सागर में तैरने लगेंगे।

किन्तु स्वय पर केन्द्रित होना, चित्त को स्वयं पर ही लगा देना सामान्य बात नही है। अनादि अनन्त काल से हमारी चित्त वृत्तियाँ भ्रमित है, हमारी चित्त वृत्तियाँ विभाव में दौड़ रही है। उन्हे हमे स्वभाव में लाना है। इस विभाव

की दशा को कहते हैं एक आरोपित दशा, जो बाहर से आगन्तुक दशा है।

कल्पना करिये कि आपने एक टेरिलिन का शर्ट पहना है, नया शर्ट है, साफ सुथरा है, अभी प्रेस होकर आया है। उसको पहन कर आप बाहर निकले। वह स्वच्छ था, निर्मल था, लेकिन उस शर्ट के ऊपर पान की पीक गिर गई या कोई काला दाग लग गया। ऐसी स्थिति में आपको वह शर्ट कैसा लगेगा ? आप जब शर्ट को पहन कर बाहर निकलते हैं। लोग उसको देख रहे हैं कि आपके नये शर्ट पर पान का पीक लगा हुआ है या काला दाग लगा हुआ है, आपको भी बड़ा अटपटा लगेगा। सामने देखने वालों को भी अटपटा लगेगा। आपको शर्ट पर बाहर से आगन्तुक दाग सहन नहीं होता, बर्दाश्त नहीं होगा। आप प्रयास करेंगे कि तुरन्त घर लौटा जाय और शर्ट बदल कर धोबी को दे दिया जाय। वह दाग निकाले।

मन के दाग :

जरा इस पर आध्यात्मिक चिन्तन करें। इस आत्मा पर, इस मन पर कितने दाग लग रहे है, कितने विभाव के दाग इस पर लगे हुए है, क्या उनको साफ करने का प्रयास होता है ? हम प्रयास करते हैं उन दागों को मिटाने के लिए जो बाहर कमीज पर लग गये हैं, चेहरे पर लग गये हैं, उन्हें जल्दी साफ करेंगे। लेकिन अनन्त काल मे, अनादि काल से राग-द्वेष का काला धब्बा, विभाव की वृत्तियो के दाग इस आत्मा पर लगे हुये है, छाये हुये है, हम उन दागों को साफ करने का प्रयास नही कर पा रहे है। इन दागों को साफ

करना है तो हमें विभाव से स्वभाव मे आना होगा । दागों को साफ करना है तो अपनी सारी दृष्टि स्वय पर केन्द्रित करनी पड़ेगी, अन्यथा दागो के रहते हुये हम शॉति की सॉस नही ले सकते । लेकिन सवाल पैदा होता है कि ये दाग लगते क्यो है और इनको कैसे साफ किया जा सकता है ?

प्रभु महावीर ने बड़ा सहज व सुगम उपाय बताया है और कारणो का भी स्पष्ट निर्देश दिया है। चेतन पर दाग लगने का मुख्य कारण है, मन, वचन और काया की प्रवृत्ति का विपरीत दशा मे गमन, जिसे हम शास्त्रो की भाषा में योग कहते है, आश्रव कहते है । आश्रवो में मुख्य आश्रव है मन, वचन और काया की प्रवृत्ति । वैसे आश्रव के भेद आप जानते है, आश्रव के २० भेद है । मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग । ये पॉच प्रमुख आश्रव है । बाकी के इनके अन्तर्गत आ जाते है । लेकिन मूल में मन का आश्रव है और यह मन ही हमें विपरीत विसर्गतियो मे ले जाता है । तो हमें आश्रवो से बचने का सीधा और सहज मार्ग मिला है कि हम मन की दिशा को मोड दें ।

कल एक प्रश्न आया था आचार्य भगवन के चरणो मे कि जैन धर्म का मनोवैज्ञानिक आधार क्या है तथा धर्म में मनोविज्ञान की क्या अवस्था है ? बडा तात्विक और गहन प्रश्न था और उत्तर भी बड़ा गहन था। लेकिन हम थोडा उसके विस्तार में जावे कि मनोविज्ञान क्या है ? और जैन धर्म ने मनोविज्ञान में क्या स्थान प्राप्त किया है ?

सारा जैन धर्म मन को केन्द्रित करके चल रहा है। कर्म बन्धन का मूल कारण मन है । कर्म मुक्ति का भी मूल साधन मन है ।

मनसा कल्पते बंध, मोक्षस्ते नैव कल्पते ।

जैन दर्शन और मनोविज्ञान :

मन से ही बन्धन की कल्पना होती है, मन से ही बन्धन-मुक्ति की कल्पना होती है । मन ही है, जो हमे संसार में बाँध देता है और वह मन ही है, जो हमें मुक्ति की ओर ले जाता है । इस बात को आप अच्छी तरह समझ ले कि नरक में कौन व्यक्ति जा सकता है ? कौन सी गति का जीव जा सकता है ? और कितनी इन्द्रियों वाला जीव जा सकता है ? नरक में जाने वाला जीव कौन सा है ? किससे पूछूं कोई है जानकारी वाला ? जीव के जो १४ भेद हैं उन १४ भेदों में से नरक में जाने वाले कौन से भेद हैं ? थोडी तत्त्व चर्चा भी साथ में हो रही है । सभी पचेन्द्रिय जीव, प्रथम नरक को छोड़ कर मुख्य तौर पर जिस जीव के मन है वही नरक योग्य कर्म बन्धन कर सकता है । इसके विपरीत मोक्ष जाने वाले कौन से जीव हो सकते हैं ? मोक्ष की साधना भी मन वाला प्राणी ही कर सकता है । जिस मे मन की शक्ति विद्यमान है वही मुक्ति की साधना कर सकता है । तो हमारी साधना का मूल स्रोत मन है और साधना की विपरीत दशा मे ले जाने वाला भी मन है । आश्रव का प्रमुख द्वार मन है और मुक्ति का प्रमुख साधन भी मन है । इस रूप में मन को केन्द्रित करके सारी साधना चल रही है । मन को केन्द्रित करने का अर्थ है मन सम्बन्धी ज्ञान को प्रगट करना । इसका चिन्तन कहलाता है मनोविज्ञान । आधुनिक मनोविज्ञान में इसे सामान्य मनोविज्ञान–असामान्य मनोविज्ञान कहते हैं । और उससे ऊपर परा मनोविज्ञान है । सामान्य मनोविज्ञान

का अर्थ है—एक दूसरे के भावों को, मन के विचारों को केवल अनुमान के द्वारा जानना । आपके मन मे क्या भाव चल रहे है उसको हम आपका चेहरा देखकर, शरीर के चिह्न देखकर, आपकी बाह्य क्रियाओ और प्रतिक्रियाओं को देखकर जो अनुमान लगाते है, वह सामान्य मनोविज्ञान है। और असामान्य मनोविज्ञान मे हम थोड़े दूर रहे हुए व्यक्ति के मन के विचारो को पहचानने का प्रयास करते हैं और परा मनोविज्ञान इससे आगे की स्थिति है और वह बहुत अधिक विकसित होती है ।

मनोविज्ञान—सात मस्तिष्क :

फ्रायड नामक मनोवैज्ञानिक ने दो प्रकार के मन की कल्पना की—कासियस माइण्ड और अन्कासियस माइण्ड । इसके वाद युग ने सबकॉसियस माइण्ड की आगे और खोज की और तीन प्रकार के मस्तिष्क की कल्पना की । और आज का मनोविज्ञान ७ प्रकार के माइण्ड की बात करता है। इसको आप अपनी भाषा मे चेतन मन, अचेतन मन, अव चेतन मन शब्दो से पुकार सकते है। मनोविज्ञान का विश्लेषण सूक्ष्म है । इस सूक्ष्मता में जाने का अभी समय नही है । लेकिन जैन धर्म से मनोविज्ञान गहरा जुड़ा हुआ है। भगवान ने साधको को स्थान-स्थान पर उपदेश दिया कि तुम्हारे मन की स्थिति किस दिशा मे है इसे समझे बिना तुम मन को प्रशस्त मार्ग पर नही ला सकोगे । प्रभु ने यहाँ तक कहा कि साधक जंगल से गुजर रहा है, बडे-बड़े उतुग वृक्ष खडे है, उस साधक के मन मे यह बात नही आनी चाहिये कि बड़े-बडे वृक्ष खड़े है उनको काटा जाये तो उनसे अमुक फर्नीचर

कितना अच्छा बन सकता है । उसके मन की कल्पना से वनस्पति में प्रक्रिया होगी, उसको कष्ट होगा । कितनी सूक्ष्मता से विचार दिये है कि वनस्पति को काटने का भी विचार न करें । केलिफोरनिया के विलक्षण सन्त लूथर बरबेक ने भी वनस्पति पर गहरे प्रयोग किये है । वे वनस्पति से इतना प्यार करते है कि उनके बगीचे में दिन में कुमुदिनी खिलती है । सामान्यतया कुमुदिनी चन्द्रमा के प्रकाश में खिलती है, दिन में नहीं खिल सकती, वह उनके बगीचे में दिन में खिलती है। जो अखरोट का पेड़ ३३ वर्ष में फल देता है वह वहा पर कुछ वर्ष में ही फल देने लगता है । ऐसे ही प्रयोग महाराष्ट्र के चन्द्रपुर जिले के सरदार अजीतसिंह के यहाँ देखे गये है । वे प्रयोग करते है और जिस मौसम में चाहो जैसा फल तैयार मिल जाता है । तो वनस्पति पर हमारे विचारों का प्रभाव पड़ता है । यह मनोविज्ञान भी मान रहा है । वैज्ञानिक इससे और आगे बढ रहे है ।

मनोविज्ञान का असर केवल वनस्पति पर ही पड़ता है ऐसी बात नही है । मन की साधना की ऊचाई पर पहुंचने वाले महापुरुष कह गये हैं । उसका सहज अर्थ इतना निकालें कि हमारे मन की विभिन्न अवस्थाए है, उनमें से एक अवस्था है जिसको जाग्रत मन अथवा जाग्रत अवस्था कहते है । दूसरी अवस्था सुसुप्त है, जिसे आज की भाषा में चेतन मन और अचेतन मन कहा जाता है । उदाहरण के तौर पर आपने कोई स्वप्न देखा जो कि इस जीवन में सम्भव न हो । स्वप्न में आप किसी शेर से कुश्ती लड़ रहे है, आकाश में उड़ रहे है, हाथों को हिलाते हुए चले जा रहे हैं, आदि । क्या इस जीवन में ऐसा कर सकते है ? लेकिन स्वप्न देखने वालो के

बारे में मनोविज्ञान कहता है कि अचेतन मन में जन्म-जन्म के संस्कार उभरते रहते हैं। कुछ बातें वर्तमान जीवन की भी होती है और कुछ अतीत के जीवन की हो सकती है। शेर के साथ कुश्ती लड रहे है तो कभी किसी जन्म मे कुश्ती लड़ी हो तो इस प्रकार के सस्कार हमारे अचेतन मन में दबे पड़े रहते हैं और वे सस्कार जागृत होते हैं। आपने किसी व्यक्ति को देखा, जिससे मिलने का कभी काम नही पडा, लेकिन उसे देखते ही प्रभावित हो जाते है। वर्तमान में उससे कोई सम्बन्ध नही है फिर भी आपका ख्याल उसकी ओर जाता है।

यह मन की अनेक प्रकार की गतिविधियां हैं। इस पर नियन्त्रण को कह सकते है मन:साधना। हमारी साधना उस मन को जैसा इशारा करे, जैसी दिशा दे, मन उसी दिशा मे गतिशील हो और इस रूप मे मन अनासक्त भाव की साधना करता रहे। ससार का कार्य कर रहा है लेकिन करता हुआ अलग-थलग रहे, उसमें चिपका हुआ नही रहे। आसक्त होकर न चले तो हमारी साधना सहज बन जायेगी।

सम्यग् दृष्टि के जो लक्षण बताये उसमे भी मन की साधना का स्थान है, लेकिन यदि वह साधना अनासक्त भावना के बिना करते है तो उसका मन पर प्रभाव नही होता। आज आप साधना करते है, प्रवचन सुनते है लेकिन मन की शक्तियां कितनी आसक्त बनी हुई है? सकल्प शक्ति का कितना अभाव हो रहा है? अनन्त-अनन्त पुण्य के उदय से शरीर और मन की शक्ति मिलती है। शास्त्रीय दृष्टि से एकेन्द्रिय से बेइन्द्रिय मे जाने के लिए कितनी पुण्यवानी अर्जित करनी

पड़ती है। उससे अधिक बेइन्द्रिय से तेइन्द्रिय में जाने के लिए और उससे आगे पचेंद्रिय में जाने के लिए अनन्त पुण्य संचित करना पड़ता है। मनुष्य जीवन और भी अधिक शक्ति बटोरने के बाद अनन्त पुण्यवानी से मिला। लेकिन इस शक्ति का प्रयोग किस दिशा में कर रहे है, यह विचारणीय प्रश्न है। मन की गति का दुरुपयोग हो रहा है या सदुपयोग हो रहा है? यदि इसको सही दिशा में लगाते रहे तो चमत्कार प्राप्त हो सकता है। मन के द्वारा क्रूर से क्रूर प्राणी के मन को वदल सकते है। सामने वाला व्यक्ति कितना ही हमारे प्रति द्वेष की भावना रखता हो, लेकिन हमारे मन की गति का उपयोग सम्यग् दृष्टि जैसा हो रहा है तो क्रूर से क्रूर प्राणी को भी मुड़ना पड़ेगा। एक घटना आपके समक्ष रख रहा हूं।

पशु चिकित्सक का प्रेम और "रजिया" का समर्पण :

एक सरकस कम्पनी में धनंजयप्रसाद नाम के पशु चिकित्सक थे। वे बडा प्रयोग करते थे। एक वार प्रसंग ऐसा बना कि एक शेरनी उस सरकस कम्पनी मे आई। रजिया जिसका नाम था। वह शेरनी जव कभी डा. धनजयप्रसाद को देखती तो गुर्राकर सामने आती। डा. धनंजयप्रसाद सोचने लगे कि इतने लोगों को देखकर यह शेरनी गुर्राती नहीं है, मुझे देखकर क्यों गुर्राती है? उन्होंने अध्ययन किया, खोज में लगे, तो पता लगा कि शेरनी को पिजरे में वन्द करने वाले व्यक्ति की शक्ल डाक्टर धनंजय की शक्ल से मिलती-जुलती सी लगती है। यह शेरनी जव डाक्टर को देखती है तो उसे लगता है कि यह व्यक्ति मुझे वन्धन में डालने वाला

है। इसने मुझे पिंजरे में बन्द किया है, इसी ने मेरी स्वतन्त्रता छीनी है। इसलिए गुर्राकर सामने आती है। डाक्टर ने सकल्प किया कि किसी तरह मै इसको बदल कर रहूंगा और इसी प्रकार के प्रयास करने लगे, अधिक से अधिक उसके निकट होने लगे।

एक बार शेरनी बीमार हो गई। उसका उपचार करना आवश्यक था और वे ही पशु चिकित्सक थे। सभी लोगों ने मना किया किन्तु डाक्टर ने कहा कि मेरा कर्त्तव्य है इसका इलाज करना।

वे पिंजरे में प्रवेश करने लगे साधन और औजार लेकर। लोगों ने मना किया कि नही आपको नही जाने देंगे, आप नहीं जा सकते। डाक्टर ने कहा कि मै जाउंगा, अपना कर्तव्य पूरा करूगा। वे अन्दर चले गये। शेरनी ने उन पर हमला किया, डाक्टर साहब के चोट आई। लोगो ने झट वाहर खीच लिया। डाक्टर ने अपना उपचार करवाया और कुछ दिनों मे स्वस्थ हुए। लेकिन मन उनका पराजित नही हुआ, सकल्प दृढ़ रहा। कुछ भी हो मै शेरनी को वदल कर रहूंगा। यह मेरे प्रति द्वेप नही रख सकती जब कि मेरा इससे द्वेष नही है।

समय बदल गया। शेरनी के प्रसव की स्थिति थी। प्रसव हो नही पा रहा था। वह तड़पड़ा रही थी। डाक्टर ने देखा कि मेरे कर्तव्य का प्रसग है। डाक्टर ने कहा कि मेरा वहुत वड़ा अस्त्र प्रेम है, मै जाऊंगा। डाक्टर साहव पिजरे में प्रवेश कर गये, शेरनी के पास खड़े हुये। शेरनी छटपटा रही

थी, प्रसव नहीं हो रहा था । शेरनी ने समझ लिया कि यह व्यक्ति उपचार करने आया है । शेरनी ने दोनों पंजे ऊपर किये और डाक्टर के कंधे पर रख दिये । लोग देख रहे थे कि डाक्टर न उसका मुंह सहलाया और धीरे से नीचे रखा और धीरे-धीरे उसके पेट पर मालिश की । थोड़ी देर तक मालिश करने के बाद प्रसव हुआ । पहला बच्चा मरा हुआ निकला । पीछे दो बच्चे जीवित हुए । जो बच्चा मरा हुआ निकला उसी के कारण छटपटाहट हो रही थी । डाक्टर ने उपचार किया सब कुछ ठीक हो गया । अब डाक्टर साहब और शेरनी में इतना प्रेम हो गया कि शेरनी को चाहे जब बाहर ले आवे, किसी बच्चे को शेरनी पर बैठा देवें, फिर भी शेरनी गुर्राती नहीं थी । शायद उसने सोच लिया कि इसने इसके प्राण बचाये हैं, इसलिए वह इनके उपकार से दब गई ।

शेर क्रूरतम प्राणी कहलाता है, लेकिन उसमें कितनी दया रहती है । शास्त्रीय दृष्टि से शेर इतना क्रूर नहीं है, जितना इन्सान है । शेर मर कर अधिक से अधिक कौनसी नरक तक जा सकता है ? शेर अधिक से अधिक चौथी नरक तक जा सकता है जब कि मनुष्य सातवी नरक तक जा सकता है, तब शेर ज्यादा क्रूर है या इन्सान ? यह आपको विचार करना है । आप समझते हैं कि शेर, चीता ज्यादा क्रूर हैं, इनको मार देना चाहिए । किन्तु शास्त्रकार कहते हैं कि शेर से ज्यादा क्रूर मनुष्य है और मनुष्य में शेर से ज्यादा जहर है । मनुष्य स्वार्थी प्राणी बन गया है । वह दूसरों को खत्म करने मे देर नही करता ।

मैं कह रहा था कि शेर जैसे क्रूर प्राणी में कितनी आत्मीयता है । शेरनी अब खुले रूप से बाहर आने लगी

श्रौर खुले रूप से करतब दिखाने लगी। डाक्टर से इतना गाढ़ सम्बन्ध हो गया, वह समझने लगी कि इसने मेरे प्राण बचाये है।

आज के पेचीदे कानून :

आज इन्सान इन्सान के प्राण बचाने को तैयार नही होता है। कोई अच्छे विचारों वाला होगा तो शायद मदद करे। आज आये दिन देख रहे है कि किसी को सहयोग देना दूर रहा और उसको उलझा देंगे, फसा देंगे, ये सारी घटनाएं आपके सामने है।

आज लोग कानून व्यवस्था से इतने घबराते है कि सामने दगा हो रहा है, खड़े-खड़े देख रहे है लेकिन पास में नही जाते है। इसलिए नही जाते कि मै पास जाऊंगा तो मेरा नाम साक्षी में आ जायेगा, मुझे बार-बार कोर्ट जाना पड़ेगा या हो सकता है कि मेरे पर ही केस लागू हो जाय। यह दूसरा विषय है। लेकिन मूल बात यह है कि आज इन्सान पर उपकार करे तो शायद वह उपकार माने या न माने, लेकिन पशु उपकार मानता है। शेरनी ने अपने उपकार का बदला कैसे चुकाया यह देखिये।

उपकार का बदला—सिंहनी द्वारा :

सन् १९४२ में उस सरकस कम्पनी में एक रिग मास्टर १८ खूंख्वार जानवरो को लेकर प्रवेश करता है। वे एक घेरे मे करतब दिखा रहे थे। उसमें एक बैंकाक नाम का शेर था, जो बड़ा क्रूर था। वह इतना क्रर था कि चाहे जब किसी पर हमला बोल दे। एक बार उसने सरकस के एक

भालू पर हमला बोल दिया और उसको चीर दिया। उसको काबू में लाने के लिए अस्त्र से उस पर हमला किया और उनका जबड़ा छिल गया, उसका उपचार करना पड़ा। डाक्टर उसके पिजरे में जाना चाहते है और देखते है कि इस शेर के जबड़े में टांके लगाने पड़ेंगे। इतने समय तक इसे बेहोश रखना पड़ेगा इसलिए उस शेर को एक छोटे पिजरे में लिया और बेहोशी का इजेक्शन लगाया। वह बेहोश हो गया। उसके बाद डाक्टर साहब उस शेर के पिंजरे में टांका लगाने के लिए जाने लगे तब फिर लोगों ने मना किया कि यह क्रूर प्राणी है, आप इसके पिजरे मे मत जाइये लेकिन डाक्टर ने कहा कि मेरा कर्तव्य है। डाक्टर रजिया शेरनी को साथ लेकर पिजरे में चले गये। शेर बेहोश था, उसके टांके लगाये और पट्टी बांधी फिर सोचा कि इसके पंजे पर भी पट्टी बांधनी पड़ेगी वरना टांकों को खुरच देगा। वे पंजे में रूई लगा कर पट्टी बांध रहे थे, एक गांठ बाध चुके थे कि अचानक लाइट गुल हो गई। अंधेरा हो गया था, टार्च मिला नहीं, इतने में शेर को होश आ गया। वह खड़ा हुआ और डाक्टर पर झपटा। डाक्टर साहब के मस्तिष्क को अपने मुंह में लेकर दबाने वाला था कि वह शेरनी उनके पास में खड़ी एकाएक झपटी और उसने उस शेर के जबड़े पर धक्का दिया और उसको पीछे धकेल अपने दोनों पंजे उसके सीने पर गाड़ दिये, वह शेर आगे नही बढ़ सका। उसके मुंह से गुर्राहट की आवाज आई। लोग बाहर खड़े थे। आवाज सुनी तो लोगो ने सोचा कि डाक्टर साहब खत्म हो जायेंगे, शेर को होश आ गया है। लेकिन थोड़ी देर मे लाइट आ गई और लोगों ने देखा कि डाक्टर साहब पिंजरे के

कोने में खड़े है और शेरनी उस शेर को दबाये खड़ी है। धीरे से डाक्टर को बाहर लिया गया। फिर प्रयास करके शेरनी को बाहर निकाला गया।

देखिये क्रूरतम प्राणी शेरनी को। शेरनी ने अपने उपकार का बदला ब्याज सहित चुका दिया। यह है मन की स्थिति। मन में इतनी ताकत है कि क्रूर से क्रूर प्राणी को वदला जा सकता है।

शक्ति को ऊर्ध्व दिशा दें :

यह है जैन दर्शन का मनोविज्ञान। वह कहता है कि मन की शक्ति को ऊपर ले जाओ। आज मन की शक्ति नीचे की ओर प्रवाहित हो रही है। वासना के माध्यम से इंद्रियों से सेक्सालिटी मे सारी इनर्जी नष्ट हो रही है। उसका १० प्रतिशत भी सही उपयोग नही हो रहा हैं। उसको योग साधना से ऊपर ले जाये तो वह शक्ति अनेक प्रकार की ऊर्जा पैदा कर सकती है। हम इतना पढ़ते है, शास्त्र सुनते है, अमुक महात्मा मे ऐसी शक्ति थी, उनमे मन की शक्ति का ऊर्ध्वीकरण होता था। विस्तार में न जाकर सकेत इतना ही है कि सही दिशा में मन की शक्ति का उपयोग करना सीखें। उपयोग सही हुआ तो विभाव से स्वभाव में आना हो गया। अन्य साधना करने की आवश्यकता नहीं। हमारा सारा सन्देश स्वयं के प्रति लगेगा तो स्वय बहुत ऊचे उठेंगे। जीवन की दिशा बदलेगी। हम वीतराग वाणी सुन रहे है। आचार्य भगवन जैसे विराट समत्वयोगी व्यक्तित्व से वह वाणी मिल रही हैं। लेकिन वह भीतर उतरे, भीतर सुनाई दे तब प्रभाव होगा। अन्यथा वर्षो से सुन रहे है लेकिन

जीवन बदलता नहीं, रूपान्तरण होता नहीं। जब तक रूपान्तरण नहीं आयेगा, जीवन बदलेगा नहीं तब तक बाहर के प्रयोग से कुछ नहीं होने वाला है। हम जीवन को परिवर्तित करें। ऐसे महान् वक्ता का सान्निध्य मिला है, उनकी वाणी को जीवन में उतार लें तो निश्चित हमारा जीवन आनन्द की ओर गतिशील होगा।

क्षेत्रीय चिन्तन :

बम्बई के बोरीवली क्षेत्र में धर्म जागरण हो रहा है। जागरण की दृष्टि से जागरण कहे तो नहीं लगता। आप अधिक से अधिक संवर करते हों, अधिक से अधिक सामायिक-दया, पौषध में लगें। वह तो नहीं लगता जैसा छोटे-छोटे गाँवों में लगता है क्योंकि गाँव वालों का जीवन इतना व्यस्त नहीं होता। बम्बई के जीवन में बहुत व्यस्तता रहती है, मस्तिष्क में इतना तनाव रहता है फिर भी छुट्टी के दिन आप लाभ ले सकते हैं। आचार्य भगवन का पदार्पण आपके यहाँ हुआ है। यदि आप उनके चरणों में लाभ लें तो आपका मानसिक तनाव भी कम हो सकता है।

तपस्या का जागरण सन्त-सतियों में और भाई-बहिनों में हो रहा है। महासती कस्तूर कंवरजी के आज ३५ की तपस्या है, श्वेताश्री महासतीजी के ३१ का पारणा हुआ है। महासतीजी प्रिय लक्षणाजी के २१ की तपस्या चल रही हैं। अन्य सतियांजी के छोटी-मोटी तपस्या चल रही है। उधर घोर तपस्वी अमरचन्दजी महाराज साहब की भी तपस्या देखिये। उनके २६ की तपस्या में २८ किलोमीटर का विहार हुआ है। उन्होंने लगभग ४५० किलोमीटर का

विहार तपस्या में किया है। यह शक्ति अन्दर के मनोबल से पैदा होती है। एक तो सोये-सोये तपस्या होती है, चन्द दिन निकालने है, निकाल देते है।

इनकी यह तपस्या जागते-सोते, सारा काम हाथ से करते हुये सन्तों की सेवा करते हुये तपस्या होना बहुत बडी बात है। इस तरह मे तपस्या का क्रम चल रहा है। बाहर से अन्तर में प्रवेश करना साधना है। सन्त सतीवर्ग इस साधना में रत है। आप भी इसे ग्रहण करें। इसे नही कर सके तो और भी कई प्रकार के तप बताये है। स्वाध्याय करे, ध्यान करें, मौन करे। जितनी स्थिति बने उतना कर सकते है। जब तक महासतीजी के तपस्या चल रही है तब तक प्रति दिन एक घण्टा मौन रखेगे। मौन में बड़ी ताकत लगती है।

बम्बई, बोरीवली
३०-७-८४

३

साधना हो निष्काम

जप ले अपने प्रभु का नाम, मनवा बन जा तू निष्काम ।
पर की चिंता छोड़ दे, मनवा क्यों होता हैरान,
अपनी ही चिंता कर ले तू, कर अपना ही ध्यान ।। मनवा ।।
काया माया बादल छाया, क्षण भर का है मुकाम,
सुन्दर महल-बगीचे सारे, साथ चले नहीं दाम ।। मनवा ।।
नाम प्रभु का सच्ची नौका, पल में पार लगाय,
जिसने प्रभु नाम को छोड़ा, डूब बीच में जाय ।। मनवा ।।
दुनिया के गोरखधन्धों में, मिले कहा विश्राम,
आत्म ज्ञान सुधा रस पीले, पायेगा आराम ।। मनवा ।।
मात पिता सुत सुन्दर नारी का, करता तू ध्यान,
किन्तु साथ न देंगे कोई, जब होगा प्रस्थान ।। मनवा ।।
जगत मोहिनी से मनवा तू, अब तो ले ले विराम,
अक्षय "शांति" पा लेगा तू, प्रभु चरण को थाम ।। मनवा ।।

सम्बोधन मन को :

गीतिका की इन पंक्तियों में मनको सम्बोधित किया गया है । समस्त भारतीय दर्शनों ने, ऋषि मुनियों ने एवं

ज्ञानी तीर्थंकरों ने कहा है "मुक्ति की तरफ ले जाने का कारण और नर्क की तरफ ले जाने का कारण मन है। मन—यह उभय मुखी शक्ति है। चाहे जिस तरह इसका उपयोग करें। "मनः एवं मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।" बन्धन और मोक्ष का परिणाम मन के उपयोग पर ही है।

मन की गति अत्यन्त तेज है। मन निरन्तर दौड़ रहा है। मन पर विजय पाना यानी संसार पर विजय पाना है। "मनो विजेता जगतो विजेता।" ज्यों-ज्यो हम मन पर नियन्त्रण करने का प्रयत्न करते हैं त्यों-त्यो वह विपरीत दिशा में भागता है। यह स्थिति या समस्या आज की नहीं, हजारो लाखों वर्षो से है। मन का उपयोग किस दिशा में हो, यह विचारणीय है। अतः मन पर नियन्त्रण करना यह साधना का विषय है।

केशी स्वामी ने भी गौतम स्वामी के सामने यही प्रश्न किया—

अय (मणो) साहसिओ भीमो दुट्ठसो परिधावइ जंसिगोयम ! आरूढो, कहं तेण ण हीरसि। उत्त. सू २३-५५

मन घोड़े के समान भागता है। इसे कैसे वश में करें? भगवद गीता में भी उल्लेख है। अर्जुन ने श्री कृष्ण से यही प्रश्न किया था—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण, प्रमाथि बलवद् दृढम्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥६-३४॥

अर्जुन ने मन को वायु की-पवन की उपमा दी है। जैसे वायु को नियन्त्रित करना दुष्कर है, वैसे ही मन पर नियन्त्रण करना भी दुष्कर है। हर व्यक्ति के सामने मन की

समस्या है। मन को कैसे वश में करें ? हम सामायिक कर रहे है। मन कही दौड़ रहा है। हम माला फेर रहे है। हमारा मन कहीं भटक रहा है। मन को एक जगह बांधना बड़ा मुश्किल है। इसका कारण भी है। मन का स्वभाव है—मनन करना। 'मन्यते अनेन तत् मनः" जो मनन नही करता वह मन ही नहीं। जैसे अडियल घोड़े की अपेक्षा तेज रफ्तार वाला घोड़ा ही अच्छा माना जाता है, ठीक उसी तरह अवरुद्ध मन की अपेक्षा अत्यन्त तेज रफ्तार वाला मन ही अच्छा है। मन को पवन की उपमा दी है। पवन क्षणभर के लिए रुक जाय तो प्रलय हो जाय। अतः मनः गतिशील ही होना चाहिए।

फिर मन को रोकने का मतलब क्या है ? मतलब इतना ही है कि मन को विपरित दिशा में से लौटा कर उसे सही दिशा दे दे। सही रास्ता सभला दे। अडियल घोड़ा रास्ता छोड़ देता है, तब उसकी लगाम खींचकर उसे सही रास्ते पर लाया जाता है। ठीक इसी तरह मन पर नियन्त्रण करना चाहिए। विषय विकारों की दिशा से मन को लौटा कर साधना की दिशा में गतिशील करना है। साधना का उद्देश्य ही यह रहा है कि मन की गति को बदल दें और हमेशा उसे सही रास्ते पर रखें।

मन एक बालक :

एक बालक के हाथ में कुल्हाड़ी आ गयी। उसके पास शक्ति थी, ऊर्जा थी, कुछ करने के भाव थे, कुल्हाडी का उपयोग करना था। उसने घर के कीमती फर्नीचर को तोड़ना शुरु कर दिया। उधम मचा दिया। किसी बुद्धिमान बुजुर्ग ने उसे जलाऊ लड़कियों का ढेर बताया। लड़की फाड़ने का

तरीका भी बताया। उसने ठीक ढंग से लड़किया तोड़ दी। कुल्हाड़ी का, समय का, शक्ति का सही दिशा में उपयोग हुआ। घर में इधन की समस्या भी हल हो गयी। मन के साथ हमें भी यही व्यवहार करना है।

मन को हम विषय विकारो में से निकालें, उसे साधना की दिशा दे दे, परमात्मा के चरण पकड़ा दे। फिर देखिये मन के चमत्कार।

आज कल हम उपासना करते है, वह भी सकाम उपासना करते है। हम परमात्मा के द्वार पर भी जायेंगे तो धन-दौलत संतति की मांग करेंगे। हमारी उपासना में लोभ है, लालच है, भौतिक सुखो की वासना है। ऐसा नही होना चाहिए। हमारी साधना निष्काम हो। हम निष्काम भाव से सामायिक करेंगे, माला फेरेंगे, उपासना करेंगे, साधना में गतिशील होगे तो आत्म-कल्याण के साथ सभी भौतिक सुख अपने आप प्राप्त होंगे। चाहिये निष्काम साधना।

धर्म आचरण निष्काम भाव से :

प्रभु महावीर ने कहा, णो इह लोगट्ठयाए आयार महिट्ठेज्जा, णो पर लोगट्ठयाए आयार महिट्ठेज्जा। णो कित्ति-वण्णसद्द सिलोगट्ठयाए आयार महिट्ठेज्जा नन्नत्थ निज्जरट्ठाए आपार महिट्ठेज्जा। दशवै ०९-४। ऐ साधको, धर्म का आचरण करो। धर्म की उपासना करो। किन्तु आपकी उपासना में इस लोक के भौतिक सुखों की कामना न हो। परलोक के भौतिक सुखो की कामना न हो। यश कीर्ति प्रसिद्धि पाने की अभिलाषा न हो। आपकी साधना सिर्फ निर्जरा के लिए हो। इससे अन्तराय कर्म कटेंगे। अन्तराय

कर्म क्षीण होने पर जो मिलना है, वह अपने आप मिलेगा ही । साधना का सौदा मत करना । अपनी साधना को भौतिक सुखों के लिए मिट्टी के मोल बेच मत देना । पूणिया श्रावक की एक सामायिक का मूल्य कोई नही आंक सका । दुनिया भर की निधियां एक सामायिक की दलाली के लिए भी पर्याप्त नही थीं । अतः अपनी साधना से क्षुद्र पदार्थों की मांग न करे । इस पर एक दृष्टांत याद आ रहा है-

एक सम्पन्न व्यापारी था । व्यापार में घाटा लगा । उसकी हालत बिगड़ गयी । गांव में पहले जैसी प्रतिष्ठा नही रही । जिस गांव में मान-सम्मान मिला उसी गांव में उपेक्षित जीवन जीना उसके लिए दूभर हो गया । इधर-उधर से उसने दो हजार रुपये उधार लिये और कमाई करने परदेश के लिए प्रस्थान किया । भ्रमण करते हुए वह एक समुद्र किनारे आया जहा उसे बड़ी भारी भीड़ दिखाई दी । भीड़ क्यों है यह जानने की उत्सुकता हुई और वह भी भीड़ में शामिल हो गया । उसने देखा वहा कुछ गोताखोर थे । समुद्र में एक गोता लगाने का वे ५०० रु. लेते थे । समुद्र में डुबकी लगाते, जो कुछ ककर-पत्थर हाथ लग जाते, ऊपर ले आते और जिसने गोता लगाने के ५०० रु. दिये थे, उसे दे देते । इन कंकरों में कभी मणि, रत्न और मोती भी निकलते जो बहुत मूल्यवान भी होते थे । जौहरी वही बैठा रहता और कमीशन के आधार पर वह उन रत्नों का मूल्य आंकता था ।

इस व्यापारी को लगा क्यों न अपन भी अपना भाग्य आजमा लें । उसने गोताखोरों को ५०० रु. दिये । गोताखोर ने गोता लगाया । सिर्फ कंकर हाथ आये । दुबारा ५०० रु.

दिये । यह भी गोता खाली गया । लोगों के आग्रह से तीसरी बार रु. ५०० दिये । इस बार भी तकदीर से कंकर ही लिखे थे । अपने भाग्य को रोने लगा । उधार ली हुई पूंजी बरबाद हो गई थी । अब सिर्फ ५०० रु. बचे थे । लोगों ने कहा यूं भी तो पूंजी खत्म हो गई है । ५०० रु बचे है, उसमें तो व्यापार होगा नहीं । उसने बचे हुए ५०० रु. भी दाव पर लगा दिये । अब की बार ककरो में एक मणि निकली । जिसका मूल्य जौहरी ने २५ रु आंका । उदास और हताश हृदय से व्यापारी जेब में मणि डाल कर शहर की तरफ निकला ।

जेब मे मणि के सिवा कुछ नही । खाने पीने का जुगाड़ तो करना पड़ेगा । मणि को बेचे बगैर कोई चारा नही । रास्ते मे एक जौहरी की पेढी दिखाई दी—फर्नीचरो से सुसज्जित । जौहरी, मुनीम, गुमाश्ते सभी दुकान मे बैठे हुए थे । व्यापारी के वस्त्र फटे-पुराने मैले थे । पेढी मे प्रवेश करने का साहस जुटा नही पाया । दुकान के सामने टहलने लगा । जौहरी की निगाह गयी । उसको अनुभवी नजरों ने भॉप लिया कि यह कोई दु.ख का मारा साधर्मी बन्धु है और दुकान में आने के लिए हिचक रहा है । जौहरी स्वय आगे बढा । व्यापारी को पेढी मे लाया और अपने पास बिठा कर पूछताछ आरम्भ की । इतना बडा नगर सेठ और नम्रतापूर्ण व्यवहार देखकर व्यापारी सकोच मे गड़ा जा रहा था । जौहरी ने व्यापारी के स्नान का प्रबन्ध करवाया । भोजन करवाया । साधर्मी भाई को जो सत्कार दिया जाता है, वह सभी सत्कार उसे दिया और उस व्यापारी से उस शहर मे आने का प्रयोजन पूछा ।

मुंह मांगा मोल :

व्यापारी ने अपनी कथा और व्यथा जौहरी को सुनायी। उनके सामने मणि रखी और उसे बेचने की इच्छा प्रदर्शित की। वह जौहरी कुबेरपुत्र था, प्रामाणिक था। अच्छे संस्कार थे। साधर्मी भाइयों के लिए उसके हृदय में दया थी, अनुकम्पा थी।

आज हम देखते है ज्यों-ज्यों सम्पत्ति वढ़ती है, साधर्मी—दीन,दु.खी भाइयों के प्रति उपेक्षा वढती है, घृणा के भाव वढ़ते हैं। आज तो यह चित्र है।

माया से माया मिले, कर कर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीब की, कोई न पूछे वात॥

भाइयों, दीन, दुःखी और गरीवों से आप दो शब्द मीठे ही बोल लेते है, तो वे अपने को कृतकृत्य समझ लेते हैं। उनके मन में प्रसन्नता खिल उठती है। आप कार से जा रहे है। रास्ते में कोई गरीब सधर्मी पैदल जाता दिखाई दे दिया और आपने कार रोक ली। उसे लिफ्ट दी। आपका नुकसान तो कुछ न हुआ, लेकिन वह राहगीर हमेशा-हमेशा के लिए आपका बन गया। किसी आदमी को अपने से जोड़ना हो तो हृदय में अनुकम्पा अवश्य होनी चाहिए, वाणी में मिश्री की मिठास होनी चाहिए।

जौहरी ने व्यापारी से कहा—भाई, यह मणि यदि बेचना हो तो इसका मूल्य बता दो। जितना भी मूल्य माँगोगे उतना तुम्हें मिल जायगा। व्यापारी को आश्चर्य हुआ। २५ रु.

की मणि और जौहरी कहता है जितना माँगोगे उतना मूल्य मिलेगा । मन में धारणा की—पच्चीस हजार मागू । लेकिन अपना नाजायज लालच दिखाई देगा इस डर के मारे शब्द प्रकट नही हुए । जौहरी ने फिर से कहा, डरो मत, मागो माँगने में कंजूसी मत रखना । व्यापारी को लगा जौहरी गरीब का मजाक तो नही कर रहा । उसने अपनी शका प्रकट की । जौहरी ने उसे आश्वस्त कर आग्रहपूर्वक कहा—देखो, बहुत बडा दिल करके माँग लो । मागने में कजूसी मत करना ।

व्यापारी उलझन में पड़ गया । उसे विश्वास नही हो रहा था । उसने बहुत हिम्मत कर उडान भरी और सवा लाख रु. माँगे, जो जौहरी ने उसे तुरन्त चुका दिये । व्यापारी सोच रहा है, यह स्वप्न तो नही ? यदि सत्य है तो हो सकता है यह मेरे मणि का मूल्य न हो । जौहरी ने साधर्मी भाई समझ और मुझ पर दया कर सहायता के रूप मे दान दिया हो ।

वैभव बनाम कचरा :

पुराने जमाने में ऐसी इन्सानियत थी । लोगो में साधर्मी-वात्सल्य की भावना थी । पूज्य श्री श्रीलाल जी म. सा. के समय का किस्सा है । बीकानेर में धर्मनिष्ठ श्रावक सेठ श्री गणेशमल जी मालू रहते थे । उनके यहाँ पशुधन बहुत था । प्रतिदिन छाछ बनती थी और सभी घरो में बाटी जाती थी । दूध बेचना पाप समझते थे । आज तो छाछ का पानी भी दाम देने पर प्राप्त नही होता । मालू जी स्वय छाछ बाँटते थे । दीन-दु:खी, बेसहारा लोगों के बर्तनों में छाछ डालते वक्त उनमें चाँदी के सिक्के चुपचाप डाल देते थे । घर जा कर

उनको पता चलता । कोई लौटाने आता तो बोल देते थे ये सिक्के मेरे नही । तुम्हारे ही होगे । लेने वाले की प्रतिष्ठा में आंच न आये, उसे शर्मिन्दा न होना पड़े, तीसरे कान पर खबर न पड़े इसका पूरा ख्याल रखते थे । उन्हें न यश की अभिलाषा थी, न नाम के पीछे दौड़ते थे । मौन और प्रसिद्धिविमुख होकर दीन-दुःखी भाइयों की वे हमेशा सहायता करते थे । किसी तरह यह बात पूज्य श्रीलालजी म.सा. के कानो पर पहुची। उन्होने मालूजी से पूछा । आप तो बहुत लाभ कमा रहे है? मालूजी ने बताया—"गुरुदेव ! यह कचरा बढ़ता ही बहुत है। मैं जितना बाहर फेकने को कोशिश करता हूं, उतना ही यह बढ़ता जा रहा है । आप ही तो फरमाते हैं कि—

पानी बाढे नाव में, घर में बाढ़े दाम ।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ।।"

सच है सुपात्र दान से सम्पत्ति बढती ही है।

आज हम दान करते है—हमारे नाम का संगमरमर का पत्थर लगे इसलिए । नाम और प्रसिद्धि के पीछे हम दौडरहे हैं । लेकिन हमारे काम ढग के नहीं । हम टाटा, बिडला बनना चाहते है । दुनिया की सारी सम्पत्ति बटोरना चाहते है । चाहे जितना धन इकट्ठा करे फिर भी हमें संतोष नहीं होता। कवि सुन्दरदास की कविता है—

जो दस-बीस, पचास भये, शत होय हजारन, लाख मंगेगी।
कोटि अरब, खरब भये, धरापति होने की चाह जगेगी।
स्वर्ग-पाताल को राज मिले, तृष्णा अधिकी अति आग लगेगी,
"सुन्दर" एक सतोष बिना शठ, तेरी तो भूख कभी न भगेगी।

इन पंक्तियो में तृष्णा का सही स्वरूप बताया गया है। हरेक चाहता है मेरी प्रतिष्ठा बनी रहे, मेरी मूंछ ऊंची रहे। लेकिन हमारे मन की तृष्णा गहरी होती जा रही है और उसकी गहराई में हम डूब रहे है । हर व्यक्ति अपनी पगडी की प्रतिष्ठा को बचाने में लगा है।

पगड़ी की लाज :

वम्बई में एक सेठ जी अपनी दुकान में गद्दी पर बैठे थे। किसी काम से उठ कर मेडी पर गये। मुनीम लोगो को सेठ जी की नकल करने की मजाक सूझी। एक मुनीम सेठ जी की गद्दी पर बैठा, सेठ जी की पगड़ी अपने सिर पर रखी, सेठ जी की कलम हाथ में ली। कागज पर सब मुनीम और नौकरों के नाम लिखे और सेठ जी के आवाज की नकल करते हुए हरेक के वेतन में ५० रु. वृद्धि की घोषणा कर दी। सेठ जी जल्दी लौट आये और सीढियो पर खडे-खडे यह देख रहे थे। मुनीमो को मालूम नही था। सेठजी नीचे आये। उन्होंने कहा—"यह तो आपका मजाक हुआ। लेकिन मुझे भी तो अपनी गद्दी-पगड़ी एव कलम की लाज रखना जरूरी है।" उन्होने सबके वेतन मे ५० रु. वृद्धि कर दी। ऐसी आन-बान और शान के धनी थे पहलें के श्रावक जो साधर्मी भाइयों के प्रति वात्सल्य भाव रखते थे। किन्तु आज हमारा मन किस वितृष्णा मे भरा है। मनुष्य के मन की तृष्णा का अन्त नही।

मनुष्य की खोपड़ी !!!

सम्राट्—सिकन्दर एक चमत्कारी महात्मा के पास पहुंचा। अनुनय विनय की और कहा महात्मन्। मुझे ऐसा

वरदान दो जिससे मैं सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर सकूं। महात्मा ने पूछा "पृथ्वी पर विजय प्राप्त हो जाने के वाद क्या करोगे ?" सिकन्दर ने जवाब दिया—तब तो चैन की नींद सो सकूंगा। महात्मा ने समझाया। फिर अभी क्यों नही सो जाते, जैसे मैं चैन की नींद सोता हूं ? बात सिकन्दर के पल्ले नहीं पड़ी। महात्मा अन्दर गये। अन्दर से एक मानवी खोपड़ी लाये और सिकन्दर को देते हुए कहा—"इस खोपडी को अनाज से भर दो। फिर सैन्य लेकर देश-देशान्तर को प्रस्थान करो तुम्हारी फतह होगी।" इतनी सी बात। सिकन्दर ने लाख कोशिश की। सारे देश का अनाज मगवाया, लेकिन खोपड़ी अनाज से नही भरी। खाली की खाली ही रही। क्योंकि वह मानव की खोपड़ी जो थी। मानव की तृष्णा का कभी अन्त नहीं हो सकता।

इधर व्यापारी ने जौहरी से सवा लाख तो ले लिए लेकिन मन में शंका उठी कि जौहरी ने मुझ पर उपकार स्वरूप तो नहीं दिये। हिम्मत कर उसने जौहरी से पूछा—"सेठ जी, मैंने मूल्य तो आप से लिया है लेकिन सही-सही बताइये क्या इस मणि का इतना मूल्य है ?"

जौहरी ने कहा—"भाई, यह मणि नौ करोड़ रुपये मूल्य की है। तभी तो मैं तुमसे कह रहा था कि चाहे जितना माग लो।

व्यापारी अब पछता रहा है। क्यों मैंने अपने मुंह से इसका मूल्य माँगा। यदि मै जौहरी पर ही छोड़ देता कि आप उचित समझें उतना दे दो। तो संभव है मुझे पाँच करोड़ रुपये अवश्य मिल जाते।

इस दृष्टांत से हमें सीख मिलती है कि हम अपनी साधना का सौदा न करें। भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए साधना न करें। हमारी साधना यदि निष्काम होती तो स्वयं अपना मूल्य जितना है, उतना हमें चुका देगी। धर्म साधना निष्काम भाव की साधना होनी चाहिए। इसीलिए पद में कहा है—

"मनवा, बन जा तू निष्काम।"

निष्काम साधना से जो मिलेगा वह बहुमूल्य होगा। आज निष्काम छोड़ सकाम साधना भी नही हो रही है।

सुबह हम सामायिक करते हैं। दुपहरी में कोई बड़ा मुनाफा नही हुआ तो हमारी आस्था काफूर हो जाती है। सुबह आम का पौधा लगाते है, शाम को फल लेने दौड़ते है। सारा जीवन तनाव में बीत रहा है। सारी आयु और ताकत संसार के फैलाव में लग रही है।

क्या ले जायेंगे साथ में ?

क्या कमाया है आपने अपने जीवन में ? जाते वक्त कितना साथ ले जाओगे ? चौबीस घण्टे भौतिक साधनों की कमाई कर रहे हो। आत्मा की उपेक्षा हो रही है। याद रखिये। आपके साथ धर्म, साधना और पुण्य होगा तो ही काम आयेगा। श्वास का भरोसा नही। कब आयु समाप्त होगी, कह नही सकते। कोई दुकान में सौदा तोलते लुढ़क रहा है, कोई सिगरेट का कश खीचते ही ढेर हो रहा है, किसी को ठोकर लगी और उसके प्राण पखेरू उड़ जाते है। आये दिन ये किस्से आप अपनी आँखों से देख रहे हैं। फिर भी आप जागृत नहीं हो रहे है।

इसीलिए मन पर नियन्त्रण करो। मन पर नियन्त्रण पा लिया तो साधना भी आसान बन जायगी। गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।।६–३५

निःसदेह मन चंचल है और कठिनता से वश में होने वाला है। परन्तु अभ्यास—बार-बार यत्न करने से और वैराग्य से वश में हो जाता है।

तृष्णा के पीछे दौड़ोगे तो उतने ही तृष्णा के जाल में फसते जाओगे, तृष्णा बढ़ती ही जायेगी। तृष्णा समाप्त होने पर ही आसक्ति टूटेगी और कदम साधना के मार्ग पर अग्रसर होंगे। दो रुपये का ताला उस तिजोरी का रक्षण करता है जिसमें लाखों की सम्पत्ति भरी पड़ी है। आपका छोटा-सा सुपात्र दान आपकी सम्पत्ति में वृद्धि करने वाला बन सकता है। दान रूपी ताला दया, अनुकम्पा एवं मानवता के भण्डार का रक्षण कर सकेगा।

सम्यक् साधना मनुष्य योनि में नही करोगे तो कब करोगे? क्या पशु योनि में करोगे? क्या नर्क योनि में करोगे? या देव योनि में करोगे? अरे! देव योनि में साधना संभव नही। यह मानव जन्म मिला है। सुस्ती उड़ाओ। जागृत बनो। पुरुषार्थ पूर्वक निष्काम भाव से साधना के मार्ग पर अपने दृढ़ कदम बढ़ाओगे तो आपका जीवन सफल होगा।

धुलिया : २५ अप्रेल, ८४





रोग आंतरिक : उपचार बाह्य

मना रे तू काहे को करत कुसंग :

मना रे तूं काहे को करत कुसग ।
करत कुसंग कुबुद्धि उपजत है, परत भजन मे भग । म. । टेर ।
आत्म ज्ञान सुधारस छाडी, करत विषय विष सग ।
भोगी बन कर दौड़ लगाता, नस नस व्यापी तरग । म ।
योगासन मुद्रा में बैठा, करत है प्रभु भजन ।
तू तो दौड़ लगाता वाहर, यह कैसा है ढग । म. ।
बन अभिमानी कर निजमानी, हो जाता निशंक ।
अपना आपा भूल के मनवा, डोले बन के तुरग । म. ।
पर की चिता छोड़ दे अब तो, त्याग पराया सग ।
अपनी ही चिन्ता कर ले तू, कर अपना ही सग । म ।
निज-पर का विवेक जगा ले, रग जा प्रभु के रग ।
पल भर मे मिल जाए 'शाँति', कर 'नाना गुरु' सग । म. ।

पूर्व मे वताया गया था कि मन पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेने से साधना में कैसे निखार आता है । अब हम

यह देखेंगे कि कर्मबंध क्यों होता है। मन की वृत्तियों का इसमें क्या स्थान है।

कर्म बंध के कारण :

आचार्य उमास्वाती जी ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' में बताया है कि 'मिथ्या दर्शनाविरति प्रमाद कषाययोगा बध हेतवः।' अर्था कर्मबध के पांच हेतु है, कारण हैं, निमित्त हैं। १ मिथ्यात २. अविरति। ३. प्रमाद। ४. कषाय और ५. योग इन पांच कारणो से ही कर्मों का बध आत्मा के साथ होत है। इनके क्रम में भी एक विशेषता है। मिथ्यात्व को प्रथ क्रमॉक पर रखा है। अविरति दूसरे क्रमांक पर है। य इन्हे ठीक से समझने के लिए इन क्रमाकों को एक के अ एक इस ढग से रखे तो १ २ ३ ४ ५ यह संख्या बन जायेगी

मिथ्यात्व पहले क्रमाँक पर है इसका मतलब कर्म ब का मूल और प्रभावी कारण मिथ्यात्व ही है। मिथ्यात्व जीवन से हटाया तो शेष कारणों की शक्ति घट जायगी १ २ ३ ४ ५ इस संख्या में से मिथ्यात्व का क्रमाँक यदि निक दिया जाय तो संख्या २ ३ ४ ५ बचेगी। प्रथम क्रमॉक मिथ्या नष्ट होते ही १० हजार गुणा कर्मबंध नष्ट हो जायेंगे।

आगे चल कर यदि हमने व्रत नियम अंगीकार लिए, अविरति को नष्ट कर दिया तो अविरति का २ क्रम नष्ट हो जायगा। और सिर्फ ३.४ ५ संख्या बचेगी। इस त हम कर्म बंध का एक-एक कारण पूर्वा पर नष्ट करते रहेंगे हमारे कर्मबधों की तीव्रता बडे भारी अनुपात में कम हो चली जायगी। इसलिए मिथ्यात्व को कर्मबध का मूल का

कहा गया है। प्रमाद हट जाय, कषाय हट जाय तो मन वचन काया के योगों से होने वाला कर्मबंध बहुत ही क्षीण होगा। मिथ्यात्व मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम कही गयी है।

परिभाषा–पल्योपम–सागरोपम :

जैन दर्शन में पल्योपम-सागरोपम-कोडाकोडी ये शब्द बार-बार आते है। इन्हे भी हम समझ ले। ये शब्द कालगणना वाचक शब्द है। उत्कृष्ट यानी ज्यादा से ज्यादा (Maximum), जघन्य यानी कम से कम (Minimum), स्थिति यानी समय या काल। जितने अवधि तक उस चीज का अस्तित्व है वह उसकी स्थिति है। अंको में जो संख्या लिखी नही जाती ऐसे समय को समझाने के लिए पल्योपम इस शब्द का प्रयोग होता है। चार कोस (८ मील) चौड़ा, चार कोस लम्बा और चार कोस ऊडा एक गड्ढा बनाया जाय। उस गड्ढे को सूक्ष्म से सूक्ष्म बालो से ठसाठस इस तरह भरा जाय कि उसमें पानी एक बूंद भी प्रवेश न कर सके। इस गड्ढे मे से हर सौ वर्ष के बाद एक बाल निकाला जाय। जितने समय मे वह गड्ढा पूरी तौर से खाली होगा, उतनी काल गणना एक पल्योपम कहाती है। एक करोड़ की संख्या को एक करोड़ से गुणा करने के बाद जो गुणनफल आता है वह एक कोड़ाकोड़ी कहाता है। ऐसे १० कोड़ाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। ऐसे ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की मोहनीय कर्म की स्थिति है।

हम जैन कुल में पैदा हुए है और अपने कों सम्यग्दृष्टि कहलाते है। लेकिन हमारा जीवन कैसा है? हमारा आचरण कैसा है? हमारा व्यवहार कैसा है? कभी हमने अपने अंतरंग

में झांक कर देखा है ? यदि हम अतरग में झांकेगे तो हमें दिखायी देगा, हम अधिकाँशतया दुष्प्रवृत्तियों में बहे जा रहे हैं । हमारी आत्मा मलिन बनी हुई है । कषायों से हम लिप्त हैं हमें सावधान होना है और इससे मुक्ति पानी है । कोई आदमी रुग्ण है, लेकिन जब तक उसे स्वयं को बोध न हो कि मैं रुग्ण हूं, वह बीमारी से मुक्ति पाने का प्रयास कैसे कर सकेगा ?

यही हालत आज हमारी है । हमारे जीवन की स्थिति विपरीत बनी हुई है । हमारी आत्मा में रोग हो रहा है । इस रोग से मुक्त होने की तत्परता-उल्लास हम में दिखाई नहीं देता । रोग मुक्ति के भाव ही पैदा नही हो रहे है । यदि हो भी रहे हों तो भी हमारे उपाय विपरीत, उलटे ही हो रहे हैं और बीमारी दुरुस्त होने की अपेक्षा बढ़ रही है ।

चार पुरुषार्थ बनाम चार दवा की पुड़िया :

एक देहाती को तेज बुखार हो आया । इलाज के लिए वह वैद्य के पास पहुचा । वैद्य ने उसे चार पुड़ियां दी । दो पुड़िया अनुपान के साथ खाने को कही और दो पुड़िया तेल में मिला कर बदन पर लेप करने के लिए कहा । देहाती घर आया । दो पुड़िया खाली । दो पुड़ियों का बदन पर लेप कर लिया । थोड़ी देर में ही उसकी वेदना तीव्र हो गयी । वेदना के मारे वह छटपटाने लगा । वैद्य को बुलाया गया । वैद्य ने जांच की, आसार देखे और जान लिया कि इस देहाती ने बाह्य उपचार यानी लेप के लिए दी हुई दवाओं को तो खा लिया है और खाने की जो दवाई थी उससे लेप कर लिया है । ऐसी

विपरीत क्रिया से बीमारी कैसे हटेगी। वह तो बढ़ेगी ही। यही हालत आज हमारी हो रही है।

पुरुषार्थ चार बताये गये हैं। १ धर्म, २ अर्थ, ३ काम और ४ मोक्ष। इनमें धर्म और मोक्ष ये दो पुरुषार्थ खाने के लिए यानो जीवन के अंतरग में उतारने के लिए है। अर्थ और काम ये दो पुरुषार्थ बाह्य आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए लेप सदृश है। जो जीवन में उतारने की वस्तु है उससे तो बाह्य लेप आडम्बर दिखावा हो रहा है और जो सिर्फ बाह्य लेप की वस्तु थी वह जीवन की गहराई में उतर कर अपना स्थान अन्दर मजबूत कर रही है। धर्म जीवन में उतर नही पा रहा है। धर्म के नाम पर हम जो कर रहे है वह सारा प्रदर्शन मात्र रह गया है। ऐसे मरीज को कौन दुरुस्त करने मे समर्थ हो सकेगा? (श्रोताओं में से एक आवाज—"गुरुदेव दुरुस्त करेंगे।")

भाइयो! आत्मा की बीमारी गुरु दूर कर सकते है। सतो का भी भाव यही होता है कि आत्मा की बीमारी दूर करने में मददगार बनें। किन्तु मरीज यदि जिद्द करके बैठ जाये कि मै तो औषधि का विपरीत प्रयोग ही करूंगा तो सत क्या करें?

बीतराग वाणी की खीर :

मै आपसे पूछता हूं? सत आपके यहां गोचरी के लिए पधारे। आपने बढ़िया खीर संतों के पात्र में वहरा दी। संत मकान से बाहर निकले और वहीं पर आपकी आँखो के सामने वह खीर संतों ने नाली में बहा दी। यह देख कर आप पर

क्या बीतेगी ? आपके भाव कैसे होंगे ? आपको गुस्सा तो नहीं आयेगा ? उत्कट भावों से आपने खीर बहराई, उसे नाली में फेंकते देख आपको और बहराने का उत्साह रहेगा ? क्या यही विचार संतों का भी नही होता होगा ।

संतों के द्वारा वीतराग वाणी आपको सहज रूप से मिल रही है । यथाशक्ति उसे स्वादिष्ट और सुगम बना कर वह वाणी हम प्रवचनों के द्वारा आपके पात्र में बहराते है। लेकिन बड़ा खेद होता है कि वह वीतराग वाणी की खीर आप तो नाली तक (स्थानक के बाहर तक) भी नहीं ले जाते हैं । जहां बैठे है वही छोड़ कर उठ खड़े हो जाते है । हम शुद्ध भावना से आपको प्रवचन सुनाते हैं । लाउडस्पीकर का उपयोग नही करते । गला फाड़कर बोलते है । लेकिन उस प्रवचन को जीवन में उतारने की बजाय आप यही छोड़ जाते हैं, तो फिर हम अपनी शक्ति, अपना समय इसमें फिजूल क्यों बरबाद करें ? इतना समय अपनी आत्म साधना में लगा दें तो हमारा मार्ग जल्दी प्रशस्त हो सकता है । किन्तु ध्यान रहे । धार्मिक प्रवचन देने वाले वक्ता की तो एकाँत निर्जरा निश्चित ही होती है । लेकिन श्रोता की निर्जरा भजना से होती है । निर्जरा होगी या नही भी होगी, यह श्रोता के अध्यवसायो पर निर्भर है ।

तनाव रहित जीवन ही शांति से भर सकता है । आपके जीवन में पारिवारिक, आर्थिक आदि कई प्रकार के तनाव है, संघर्ष है, इन संघर्षो की शृंखला निरन्तर बढ़ती जा रही है । और यह सब हो रहा है संस्कारों के अभाव के कारण । हम पर अच्छे संस्कार नहीं । हमारे बच्चों पर धार्मिक संस्कार

नही। विनय का तरीका हमें मालूम नही। धर्म का स्वरूप हम जानते नही। आध्यात्मिक साधना के भाव हमारे अन्दर नही, और हम निकले है शांति की खोज में। आप प्रवचन में आते है। आप अपने घर के बच्चो को कभी साथ लाये है? बच्चे सुसस्कारित कब और कैसे वनेगे?

संस्कार सम्पन्न बालिका :

धार्मिक सस्कार सम्पन्न एक वालिका ससुराल जा कर कैसे अपने परिवार के जीवनक्रम को बदल देती है इसे एक दृष्टात द्वारा समझिये। एक लघु वयी सत गोचरी के लिए एक सेठजी के घर गये। सेठ जी बडे अविनयी थे। बाहर दुकान में वैठे रहे। उनकी पुत्र-वधू ने संत को आहार बहराया। संत नव दीक्षित थे। उस गृह लक्ष्मी ने कहा—"अजे सवार" अब तो सबेरा हुआ। सत ने जवाब दिया—"काल न जाण्यों" मैने काल को नही जाना। संत ने पूछा "तुम्हारे घर का आचार कैसा है?" पुत्र-वधू ने जबाब दिया "मुझ घर वासो जीमणा" संत ने पूछा—

किता वर्ष में तुझ पति किता वर्ष में पूत।
सुसरो किता वर्ष मे, तुझ घर केवो सूत॥

पुत्र-वधू ने जबाब दिया—

आठ वर्ष में मुझ पति, बार वर्ष मे पूत।
सुसरो झूले पालणे, मुझ घर एवो सूत॥

सेठ जी यह वार्तालाप सुन रहे थे। क्रोध से भर उठे। दडा लेकर दौडे, स्थानक में गये। गुरु के पास शिकायत की।

शिष्य को बुलाया गया। शिष्य और पुत्र-वधू के बीच जो वार्तालाप हुआ उसका कथन कर सेठ ने उसका मतलब पूछा। शिष्य ने कहा, "गुरुदेव ! सेठ जी की पुत्र-वधू बहुत ही विचक्षणा है, विदुषी है। मेरे बदन पर के वस्त्र देख कर उसने जाना कि मै नव दीक्षित हूं और अल्पवयी हूं। अत: उसने कहा—अब सवेरा है। यह सबेरा यानी मेरे जीवन का सबेरा यानी सिर्फ शुरूआत है। यही भाव उसका था। अभी तो जीवन का मध्याह्न, सायकाल होना है। आपने इस उषाकाल में ही संयम क्यो स्वीकार कर लिया ? मैंने कहा कि बहिन, मैने काल को नहीं जाना है। न जाने किस क्षण काल आ जाए कोई विश्वास नहीं। अत: जितनी शीघ्र साधना की जाए, कर लेनी चाहिए।

मैंने सहज ही प्रतिप्रश्न कर लिया—तुम्हारे घर का आचार क्या है। इस प्रश्न का उत्तर उसने दिया कि मेरे घर बासी जोमन होता है। इसका मतलब था कि पूर्वभवों की पुण्याई अभी तक उसके घर में काम आ रही है और इस भव में कोई नया धर्माराधन नहीं हो रहा है। इस भव में धर्माराधन होता तो वह ताजा भोजन कहलाता। उम्र पूछने पर उसने हरेक की जो उम्र बतलाई वह आध्यात्मिक साधना की उम्र बताई। सेठजी पालने में झूल रहे हैं। इसका मतलब था कि अभी सेठ जी ने धर्माराधना की शुरुआत भी नहीं की है। पति ८ वर्ष से धर्माराधन करने लगा है और बच्चे में तो उसने जन्म से ही अच्छे संस्कार दिये है अत: वह १२ वर्ष का है। सेठ जी का समाधान हुआ। उन्हें अपनी पुत्र-वधू की चातुरी और धार्मिक लगन से खुशी भी हुई और उन्होंने धार्मिक जीवन जीने का सकल्प भी कर लिया।

चिड़िया बनाम मनुष्य :

भाइयो ! यह दृष्टांत मात्र है। साधना में हमने जितना समय बिताया, उतनी ही हमारी उम्र है। बाकी की उम्र तो पशु जीवन में बिताई हुई उम्र है, उसकी गिनती नहीं हो सकती। जीवन जब से धर्म साधना में लगा है, तब से ही वह जीवन है, बाकी जीवन व्यर्थ है। उसका कोई महत्त्व नही। यूं तो एक चिडिया भी सुन्दर घोंसला बनाती है। अपने बच्चो को अनाज के दानें ला कर खिलाती है। मनुष्य भी वही काम कर रहा है। मकान बनाना, ब्याह शादियाँ करवाना, बच्चों को पोसना। तो चिडिया मे और मनुष्य में फर्क ही क्या रहा ?

गाय घास खाती है तो बदले में दूध देती है। अरे, उसका गोबर भी काम आता है। उसकी हड्डी, चमडी, सींग भी काम आते है। लेकिन बदाम का हलुआ खाने वाले मनुष्य के शरीर से क्या प्राप्ति हुई ? किसी कवि ने कहा है—

जरा मन मे विचारो भैया, नरतन पाने का क्या सार है।
जो भक्ति करे न भगवान की, वह मनुष्य पशु अनुसार है।
खाने कमाने की चिन्ता में, रात दिवस बरबाद करे।
एक घडी भी बैठ प्रेम से, कभी न प्रभु को याद करे।
यह जीवन भी लगता भार है, भला यह भी कोई अवतार है।
पशु तो जितना खाये, उतना औरों का उपकार करे।
लेकिन मानव तू तो जितना खाये उतना बिगाड़ करे।
सुख पाने को जब तू तैयार है, सुख देने को क्यों इंकार है ?

आज के मानव से पशु ज्यादा श्रेष्ठ है। एक साहब

बड़े ओहदे पर अफसर थे। सरकारी कॉम से महानगरी जाना था। आप जानते हैं कि बड़े शहरों की होटलों में भी जगह आसानी से नहीं मिलती। उन्होंने एक होटल मालिक को प लिखा कि अमुक दिन वे उस महानगरी में आ रहे है। उन साथ उनका कुत्ता भी रहेगा। उनके लिए एक कम रिजर्व रखें।

होटल मैनेजर ने जवाब दिया—आज तक हमारी होट में किसी कुत्ते ने कभी शराब नही पी, कोई उधम न मचाया। इसलिए आपका कुत्ता आ सकता है। और य आपका कुत्ता प्रमाण-पत्र दे दे कि आप भी शराब न पीयेंगे। किसी पर-स्त्री को साथ न लायेंगे तो आप भी आ सकते हैं। यह है आज का हमारे समाज का दर्पण। कै मनोवृत्तियां बन रही हैं—आज के इन्सान की।

दशहरे के दिन अन्य लोग रावण की प्रतिमा जल है। क्योंकि रावण ने सीता का अपहरण किया था। रावण भी कुछ व्रत थे, नियम थे। उसका व्रत था कि जो स्त्री उ स्वीकार न करले तब तक वह उस स्त्री को स्पर्श नहीं करेगा इसी कारण तो सीता निष्कलंक रह सकी। हम रावण प्रतिमा जलाये जा रहे है। लेकिन आज तो चारों तरफ हजा महारावण पैदा हो गये है। अखबार खोलो। प्रायः प्रतिदि समाचार मिलेंगे—नन्ही कली पर बलात्कार हुआ। अत्याचा व्यभिचार, बलात्कार से कॉलम भरे पड़े है। और बलात्क करने वालों में कभी पुलिस भी है, समाजसेवक भी है, नेता है और दादा लोग भी है। इन महारावणों के बीच हम अप जीवन ढो रहे हैं। रक्षक ही भक्षक बन रहे है। आज

इन्सान का चारित्र नीचे गिर रहा है। जब तक धर्म के संस्कार नही, तब तक जीवन ऊपर उठ नही सकता। यह पूरा जीवन गुड्डे-गुड्डी के खेल की तरह बचकानेपन में व्यतीत हो जाता है।

जीवन एक बाल क्रीड़ा :

रास्ते में गीली रेत पडी थी। दो बच्चे खेल रहे थे। एक ने रेत का घरौदा बनाया। दूसरे ने उसे तोड दिया। दोनों में कुछ देर तक झगडा हुआ। दोनों फिर खेलने लगे। दोनों ने अपने-अपने घरौदे बनाये। भोजन का समय हुआ। दोनों ने अपने-अपने घरौदे पर लात मारी, तोड़ दिये और भाग गये। सारा संसार ऐसी बचकानी हरकतों में जी रहा है। उनके घरौदे कच्चे थे इसलिए झगड़े भी कच्चे-अल्पकाल के थे। आप पक्के मकान बनवाते हैं, इसलिए आपके झगड़े भी पक्के-कांक्रीट जैसे—दीर्घकाल की कोर्ट कचहरी के लिए होते है। उन बच्चों के नाटक जैसा ही आपके ससार का नाटक है। यह नाटक आप जीवन भर खेलते जा रहे है।

अनन्त पुण्य के उदय से यह मानव शरीर आपको मिला है जो आयु चली गयी वह व्यर्थ गयी। जो जीवन बचा है उसे संभालो। मृत्यु की घडियों में साथ आने वाला सिर्फ धर्म ही है। जिन भौतिक पदार्थों को आप एकत्रित कर रहे हैं वे, सब आपके साथ जाने वाले नही है। उन्हें यहीं पर छोड़ कर जाना पड़ेगा। जरा हृदय पर हाथ रख कर कहें कि आपने ऐसी कौन-सी वस्तु बनाई है जो आपके साथ जायगी।

सोने की सूई :

एक सेठ गुरु नानक के पास पहुचे। सम्पत्ति का अहकार

झलक रहा था। गुरु नानक से बोले—मुझे कुछ सेवा का मौका दें। नानक जी ने कहा—"भाई, तुम जैसा गरीब तो मैंने अभी तक नहीं देखा।" सेठ के अहंकार को चोट लगी। उन्होंने अपनी सम्पत्ति और ऐश्वर्य का बखान किया। गुरु नानक ने उसे एक छोटी-सी सीने की सूई देते हुए कहा कि "यह ले जाओ और मुझे अगले जन्म में यह वापस कर देना। इतनी-सी सेवा कर दो। फिर कभी कोई काम दूंगा।"

सेठ जी घर गये। सभी दोस्त, स्वकीय और पंडितों से मशविरा किया। ऐसा कोई तरीका ईजाद करो कि सूई अगले जन्म में साथ ले जा सकूं। सभी लोगों ने हाथ झटक दिये और कहा कि सूई साथ नहीं जा सकती। एक बुद्धिमान मित्र ने सलाह दी। अच्छा तो यही है कि अभी जाकर गुरु नानक की अमानत लौटा दो। कहीं रात में मर गये तो कर्जा रह जायगा। अगले जन्म में गुरुदेव ने सूई मांग ली तो कहां से दोगे?

सेठ जी को अपनी भूल नजर आई। रात में ही नानक के पास गये। चरण पकड़े, सूई लौटाई और क्षमा मांगी। नानक ने समझाया—तुम इतना छोटा सा भी काम नहीं कर सकते और अपनी करोड़ों की सम्पत्ति पर इतना इठलाते हो। सेवा का मौका पूछ रहे हो। यह सारा संसार दुःखों से भरा पड़ा है। कदम-कदम पर असहाय रुग्ण, दीन, दुःखी मानवों की और अन्य जीवों की आर्त्त पुकार सुनाई दे रही है। सेवा के हजार मौके आपके सामने प्रस्तुत है। चाहिए सिर्फ आपके कान खुले, और आँखें खुली, हर कदम पर आपको सेवा का मौका नजर आयेगा।

आप मुसाफरी पर निकलते हैं तो सुरक्षा के लिए रास्ते का पाथेय अपने साथ बाँध लेते है। अगले जन्म के लिए आपने अपने साथ कौन सा पाथेय लिया है ? क्या प्रबन्ध किया है उस पाथेय का ? इस पर सोचो, विचार करो। सोचोगे, विचार करोगे, संभलोगे और साधना के मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ोगे तो इस जीवन में और अगले जीवन में भी आपका मार्ग प्रशस्त होगा।

धुलिया :
२६ अप्रेल, ८४



५

सामायिक साधना-आत्म-आराधना

हम अध्यात्म मार्ग के पथिक हैं। अतः साधना के लिए आत्मा का स्वरूप जान लेना आवश्यक है। हमारी आत्मा आज कैसी है और उसे कैसी होनी चाहिये इस पर मनन करना आवश्यक है। इस मनन पर प्रकाश डालने वाला एक गीत है—

म्हारी पावन आतम चादर या कुण मैली करग्यो रे,
करग्यो करग्यो करग्यो रे दागासूं भरग्यो रे ॥ म्हारी ॥

शाश्वत सुख री सत्ता वाली, सिद्ध स्वरूपी पाई,
साफ सूथरी दाग बिना री, धोली फट उजलाई।
कुण या काली करग्यो रे ॥ म्हारी ॥

काल अनादि सूं इण रे पर, करमां री गंध लागी,
दूध वारि जिम आपस में मिल, बण री है या दागी।
दाग यो गहरो चढग्यो रे ॥ म्हारी ॥

राग द्वेष री काली झाँई, छाई है अणचाही,
चार कषायां री परछाई, असली रूप छिपाई।
मैल यो गाढो बणग्यो रे ।। म्हारी ।।

मैं तो सोच्यो इण चादर ने रंगस्यूं भक्ति रंग में,
पिण कुंण बैरी पाछो लाग्यो, करग्यो मैली छिण में।
उणरो नाम बिसरग्यो रे ।। म्हारी ।।

मिलिया म्हाने ज्ञानी गुरुवर, उणरो नाम बतायो,
ओ दुश्मन है भारी जबरो, कर्माश्रव दिखलायो ।
म्हारे लारे पडग्यो रे ।। म्हारी ।।

समकित व्रत उपशम भावां री, साबण में ले आयो,
बंण धोबी मैं दे फटकारा, इण ने खूब तपायो ।
हाथ धो पाछे पडग्यो रे ।। म्हारी ।।

तप संयम निर्जरा भावसूं, आतम दाग मिटेला,
परम शुद्ध समता भावांसू, या "शाँति" पद ले ला।
अब मैं साफ समझग्यो रे ।। म्हारी ।।

गीतिका की इन पक्तियो में कुछ आलंकारिक उपमाये प्रस्तुत हुई है। शास्त्रकारों एव साहित्यकारों की यह परम्परा चली आ रही है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय भी रूपक, उदाहरण और अलंकारों के द्वारा विशद किये जाते रहे है, जो समझने के लिये आसान बन जाते है। गहन से गहन विषय भी इससे सुगम बन जाते है । यह गीतिका भी उस परम्परा का अनुकरण है । यहाँ जीवन व्यवहार का एक रूपक दिया गया है ।

आंतरिक शर्ट की सफ़ाई :

आप टेरेलिन की एक सफेद शर्ट पहन कर बाहर निकलते हैं। रास्ते में उस पर पान की पीक पड़ जाती है या काला दाग लग जाता है। उस वक्त आप बेचैन हो जाते है। लोग क्या कहेगे, इस विचार से ही आपकी बेचैनी बढ़ती है। आपको अपनी प्रतिष्ठा का ख्याल आता है। आप तुरन्त घर आकर शर्ट बदल लेते है। शर्ट पर आपको एक दाग भी बर्दाश्त नहीं होता। तत्काल आप सफाई चाहते हैं।

ज्ञानी जन पूछते हैं "आपकी आत्मा पर कितने दाग लगे हैं ?" कभी संकल्प पैदा हुआ कि इनकी भी सफाई करें ? उल्टे आप दाग बढ़ाये जा रहे हैं। हम संसार में निष्कलंक चले आये थे। अपने-पराये का भेद भी नही समझते थे। बालक निष्पाप होता है। अपना-पराया नहीं जानता। हम उसे सस्कार देते हैं। ये तेरे मम्मी पापा है। ये उसके मम्मी पापा है। ये तेरा खिलौना है। ये दूसरे का है। इस तरह अपने पराये के संस्कार उस पर आरोपित करने वाले हम है। हम बेदाग आते है लेकिन जैसे बड़े होते है वैसे हमारा जीवन राग-द्वेष से भरता चला जाता है। साफ-सुथरी चादर गन्दी होती चली जाती है। आत्मा निरन्तर मलिन हो रही हैं। दाग गहरे होते जा रहे है। आपको बाहर की अस्वच्छता पसन्द नही। लेकिन भीतर की ? आत्मा के भीतर कलुषता, राग-द्वेष, छल, कपट के धब्बे तो गहरे लगे हैं। आप सामायिक करते है। कभी आपने सोचा—जीवन का उद्देश्य क्या है ? सामायिक साधना का उद्देश्य क्या है ? या सिर्फ द्रव्य सामायिक कर आप परम्परा निभा रहे है और उसी में धन्यता मान रहे हैं ?

उद्देश्यहीन दौड़ :

एक आदमी दौड़ रहा था रास्ते से। उसे पूछा गया कहां जा रहे हो ? जवाब मिला मालूम नही। आप उसे क्या कहेगे ? पागल ! आपको तो ज्ञात है कि आपको कहां जाना है ? एक रेल्वे स्टेशन की टिकिट खिड़की के सामने बड़ी कतार थी। लोग पैसे दे रहे थे, टिकिट ले रहे थे। एक देहाती भी देखादेख कतार में खड़ा हो गया। उसका नम्बर आया। टिकिट बाबू ने पूछा कहा जाना है, कहां का टिकिट दूं ? उसने कहा मुझे नही मालूम। और बहुत सारे लोग खड़े थे, इसलिये मै भी क्यू मे खड़ा हो गया। जिसे अपने गंतव्य का पता नही उसे आप पागल नही तो क्या कहेगे ?

लेकिन आपकी हालत इनसे भिन्न नही है। हम कहां से आये ? कहाँ जायेगे ? हमारा गतव्य क्या है ? इस पर कभी मनन किया ? धर्म साधना क्यों करनी है, इसकी समझ पैदा करें। सम्यग्ज्ञान पूर्वक की गई धर्म साधना ही जीवन को आनन्द से परिपूरित करेगी।

आप सन्तो के प्रवचन नित्य सुनते है क्या सुनते वक्त आपका मन एकाग्र रहता है ? मैं अक्सर देखता हूं प्रवचन के वक्त भी श्रोताओ के हाथ मे माला होती है और उनकी उंगलिया माला के मनके घुमाती है। यह न तो श्रवण हुआ, न माला फेरना हुआ। श्रोता कैसा हो इसकी विशद व्याख्या नंदी सूत्र मे की गयी है। श्रवण करना यह भी एक कला है। आप सुने, आपके अन्तर मे शब्द रमण करते चले जायें, दिन भर आप उन पर चिन्तन-मनन करें। आप जिस काम को कर रहे है उसी काम मे तल्लीन हो जायें। श्रवण के वक्त

सिर्फ श्रवण हो। माला के वक्त सिर्फ माला पर आपका मन केन्द्रित हो। इसे ही सहजयोग कहा है।

आप श्रावक कहलाते हैं। श्रावक का अर्थ है श्रवण करने वाला। इसका विस्तृत अर्थ यो होगा—श्र-शृणोति सूत्र वाक्यानि, व-विवेकव्रत धारणम् क-करोति सदनुष्ठानानि, तद्धिश्रावकंमतं। जो विवेक के साथ सुनकर निरन्तर अच्छे कर्म करता है वह श्रावक है।

सामायिक दो घड़ियों वाली :

एक पुरानी बात है। एक बुढ़िया अपने सामने दो रेत की घड़ियां लेकर बैठी सामायिक करने। उसे पूछा गया दो घडियाँ किस लिये। उसने जवाब दिया—मैंने इस घड़ी से एक और दूसरी से एक ऐसी दो सामायिक ली है। खैर इतना अज्ञान आज नही है। लेकिन असावधानी में आज भी कोई फर्क नही आया। चार भाई इकट्ठे हो सामायिक लेंगे तो पूरे समय तक तेरी-मेरी करते रहेंगे। गाव का धोना सामायिक में अपनी जबान से धोते रहेगे। वह सारी गन्दगी आत्मा पर जमा हो जायगी। दो बहिने सामायिक करेंगी तो सास, ननद, बहू, अड़ोसी-पड़ौसी बहिनों की निन्दा का सिलसिला शुरू हो जायेगा। एक गीत है :—

पांच सात मिल कर आयी, माला निन्दा की फिराई।
तुम ही कह दो मेरी बहिनों, यह कैसी है समाई॥
राजीबाई, रतनीबाई स्याणी सूड़ीबाई।
दोपहरी में या संध्या में स्थानक मे सब आई॥
अब बातों की झड़ी लगाई, कच्ची पक्की सुनी सुनाई।
तुम ही कह दो मेरी बहिनों, यह कैसी है समाई॥

एक कहे ओ प्रेम भुवाजी, कल क्यों हुई लड़ाई ।
बड़ा मजा आया होगा पर मै नहीं आने पाई ।।
आये कमला घर जमाई गाली गाने को बुलाई ।
तुम ही कह दो मेरी वहिनो, यह कैसी है समाई ।।

आपकी सामायिक और सामायिक में आपका आचरण आज के तरुण और बालिकायें देखती है तो उन्हे आपके जीवन में दम्भ नजर आता है । क्योकि आज की पीढ़ी बुद्धिजीवी है । वे सामायिक साधना से विमुख हो जाते हैं, क्योकि सामायिक की विशुद्ध साधना उन्हे कही दिखाई नही देती । सामायिक का उद्देश्य है आत्मा की मलिनता को धो डालना, राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करना । आत्मा को कर्म रोगो से मुक्त करना । बीमारी में हम दवाई की एक टिकिया लेते है । उसमे सुधार नही हुआ तो मात्रा को बढा कर सुबह एक और शाम को एक ऐसी दो टिकिया लेते हैं । हमारी सामायिक का प्रभाव एक दिन भी न रहे, राग-द्वेष के विकारों को हम २४ घण्टे भी जीत न सके तो हमारी बीमारी गहरी है । हमें सामायिक की समताभाव की मात्रा दुगुनी, तिगुनी या आवश्यकतानुसार बढानी पड़ेगी ।

भाई-भाई का प्रेम :

हमारा दिमाग बाहरी वातो मे, लड़ाई, झगड़ा, फिसाद, छल कपट के कारस्तानो मे रस लेता है । यही नहीं सघर्ष उत्पन्न करने मे भी रस लेता है । कही भाई-भाई में पिता-पुत्र, सास-बहू में या देवरानी-जिठानी मे प्रेम है तो प्रयास करेंगे कि कैसे तुड़ाया जाय ? हम यह भूल जाते है कि इससे कितने चिकने कर्मो का बन्ध हो जायेगा । एक उदाहरण

दूं—किसी ग्राम में सम्पन्न पिता के दो लड़के थे। घर में प्रेम था, शांति थी। बहुओं में भी स्नेह और प्रेम था। मरणासन्न अवस्था में पिता ने लड़कों से प्रतिज्ञा करवाई कि वे कभी विभक्त नहीं होंगे। पिता की मृत्यु हुई। सम्पत्ति और शांति में, प्रेम में भी वृद्धि होती रही। यह बात पड़ौसी को खटकी। गृह कलह में उसके तीन तेरह हो गए थे। मेरे घर हर रोज कलह हो और पड़ौस में चैन की बंशी वजे यह उसे बरदाश्त नहीं हुआ। उसने छोटे भाई को बहकाया, कान भरे, पैसों की मदद का प्रलोभन दिया। यही नही उसे दस हजार रुपये का प्रलोभन देकर अलग व्यवसाय करने को राजी कर लिया। उसकी दुकान चलने लगी। एक दिन उस दुकान की चिट्ठी बड़े भाई के हाथ में आ गई। उसने बड़े प्रेम से पूछा। छोटे ने कहा—मेरे दोस्त ने सहयोग दिया और मैंने दुकान लगाई। इसमें आपका कोई हिस्सा नहीं है। आखिर उसने अलग हो जाने की बात की। बड़े भाई ने छोटे भाई को बहुत समझाया, मिन्नतें की, पिता के सामने की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण दिलवाया। इसका भी असर न होता देख सब धन दौलत छोटे भाई को सौप गृह त्याग करने की तैयारी दर्शाई और कहा मै इस सम्पत्ति के दो भाग नही होने दूंगा। यह सब वैभव तुम रखो, मैं तुम्हारे यहां नौकरी करके बच्चों का पालन कर लूंगा। आखिर छोटे भाई का हृदय बदला। वह बड़े भाई के चरणों में गिर कर रोने लगा और पुनः प्रेम की गंगा बह गई। छल-कपट हमेशा प्रेम और शांति को खदेड़ना चाहते है ताकि उस जगह का कब्जा उन्हें मिले। ऐसे सैकड़ों किस्से हमारे आसपास प्रतिदिन होते हैं।

आत्म-चादर :

आये दिन कर्मों के बन्धन बढ रहे हैं, आत्मा के दाग बढ रहे है, आत्मा की चादर मैली हो रही है, जीवन टेढा-मेड़ा हो रहा है। मेरा गुरु, मेरा धर्म, मेरी सम्प्रदाये ये अहं की जड़े गहराई तक जीवन में उतर रही है। बच्चो पर भी यही संस्कार पड़ रहे हैं। हम स्वयं इसके जिम्मेवार है।

आत्म-चादर की मलिनता धोनी है, जीवन में सरलता लानी है। जीवन तनाव रहित करना है तो सामायिक की शुद्ध साधना करो। मौन से सामायिक कर सको तो निन्दा विकथा से बचना आसान होगा। एक आसन से बैठोगे तो काया के दोष लगने की गुंजाइश नही रहेगी। मन का एकाग्र ध्यान रहेगा तो मन के दोषों से मुक्त हो सकोगे। समता भाव जीवन में उतर पायेगा। आपकी साधना शुद्ध होगी तो आपको अनूठा आनन्द आयेगा। राग-द्वेष से ऊपर उठोगे तो आपका जीवन भी सफल बन जायेगा।

धूलिया,
२७ अप्रेल, ८४

६

संकल्प शक्ति

अपनी आत्मा ही ईश्वर है। वह सर्व शक्ति सम्पन्न है। अनन्त आनन्द एवं अनन्त शांति के स्रोत उसी में प्रवाहित हो रहे है। किन्तु उसका वह ईश्वरत्व एव आनन्द आवृत है, अतः आवश्यकता है प्रबलतम संकल्प शक्ति की, ताकि इस चैतन्य को विभाव के भटकाव से अन्तर की दिशा प्रदान की जा सके। इस सम्बन्ध में एक गीत है।

बोल मन, अपनी जय जय बोल ।। टेर ।।
तू ही अपना खुद है ईश्वर, तुझ में बैठा है परमेश्वर
कर्ता धर्ता तू है महेश्वर, अन्तर चक्षु खोल ।। बोल ।।
कहां भटकता फिरता पगले, क्यों करता कचरे के ढगले
स्वयं-स्वयं का रूप तू लखले, कुछ पा ले अनमोल ।। बोल ।।
औपाधिक सम्बन्ध हैं सारे, राग द्वेष के जाल पसारे
इनमें क्यों तू मुग्ध बना रे, ममता बन्धन खोल ।। बोल ।।
अपना सोया देव जगा ले, शुद्ध चेतना दर्शन पा ले
अपनी जय जयकार गुंजा ले, बाहर में ना डोल ।। बोल ।।
कितना सुन्दर जीवन पावन, कर ले तू अपना मन भावन
बरसेगा "शांति" का सावन खुद से खुद को तोल ।। बोल ।।

मन की शक्ति आश्रव और संवर में :

गीतिका की इन पक्तियो में मन को सम्वोधित किया गया है। मन की दो शक्तिया है। मन की शक्ति जैसे सृजनात्मक दिशा में कार्य कर सकती है, वैसे विध्वंसक दिशा में भी कार्य कर सकती है। आगमो में जो आश्रव के कारण बताये हैं, उन्हे ही संवर के भी कारण बताये है।

जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा ते आसवा।
। आचारांग ४.२.१.।

जो आस्रव-कर्म बधन के हेतु है, वे कर्म की निर्जरा के भी हेतु हो सकते है और जो कर्म की निर्जरा के हेतु है वे कर्म बधन के भी हेतु बन जाते हैं। आस्रव के द्वार ही सवर के द्वार और सवर के द्वार ही आस्रव के द्वार बन जाते है। मन, वचन और काया की शक्तियां है। ये तीनों शक्तियाँ आस्रव बन सकती है और सवर भी बन सकती है। ये तीनो पुण्य के वध में एवं पाप के वध मे काम आती है।

आचार्य उमास्वाति जी ने कहा है—
कायवाड्मनः कर्म योग : स आस्रव :
शुभ : पुण्यस्य । अशुभ : पापस्य । ६-१-४

काय, वचन और मन की क्रिया योग है। योग ही आस्रव सज्ञक है। शुभ योग पुण्य का कारण है। अशुभ योग पाप का आस्रव है। चाहे पुण्य हो या पाप रूप में हो, मन की शक्ति का उपयोग हो रहा है जरूर। शक्ति का उपयोग हम किस दिशा में करे यह विचारणीय। इस पर हमे सोचना है।

संसार के प्राणियों को अति दुर्लभ, ऐसी यह मन की शक्ति मानव को मिली है। अन्य गति के जीवों को भी यह शक्ति मिली, लेकिन मनुष्य के समान वे उस शक्ति का उपयोग नहीं कर सकते। देवता भी नही। देव गति में भी साधना और संयम सभव नहीं। मनुष्य ही मन की शक्ति को निराबाध साधना की ओर गतिशील कर सकता है। सम्यक् विचार, सम्यक् संकल्प, सम्यक् कल्पनाओं से हम अपना जीवन बदल कर, जीवन को शांति से ओत-प्रोत कर सकते है। कहा है—

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।

हमारे संकल्प सिर्फ हमें ही नही, अन्य जीवो को और आस-पास के वातावरण को भी प्रभावित करते हैं। हमारे मन में किसी के प्रति शुभ अशुभ सकल्प पैदा होते है, तब सामने वाले के अंतःकरण में भी प्रतिक्रिया होती है और अनुकूल प्रतिकूल सकल्प खड़े हो जाते है।

वातावरण का प्रभाव :

मान लो एक कमरे में लगातार ३ हत्यायें हुई। उस कमरे में कोई प्रवेश करे तो उसमें भी वह क्रूर भावना उत्पन्न हो जायगी—उसके मन में क्रूरता के भाव जाग उठेंगे। यदि किसी कमरे में महापुरुष बैठे है तो आस-पास मंगलमय भावना छा जायगी। क्योंकि मन के संकल्पों से वायुमंडल प्रभावित होता है—वैज्ञानिकों ने भी इस सिद्धान्त को मान्यता दी है।

हम सामायिक करते है। सामायिक साधना यदि हम घर के बजाय धर्मस्थान में करें तो हमारी साधना में निखार आ सकता है। जैसा वातावरण होगा वैसी हमारी भावना

बनेगी। घर में सारा संसारी वातावरण है। स्थानक में सर्वत्र धार्मिक वातावरण है, जिससे भावनाओं में भी शुद्धि आती है।

स्थान का प्रभाव :

कौरवों के साथ पांडवो को लड़ना था। अर्जुन का मन डांवाडोल हो रहा था। आप्त जनों के प्रति करुणा के भाव थे। शस्त्र हाथ में लेना नही चाहता था। श्रीकृष्ण ने सोचा युद्ध-भूमि ऐसी हो जहा क्रूरता के भाव जाग उठें। कुरुक्षेत्र को पसंद किया। इस भूमि पर छोटी-सी बात पर बड़े भाई ने छोटे भाई का सिर काट कर खेत की मेड पर टंगा दिया था। मातृपितृ भक्त श्रवण इस भूमि पर आते ही मा बाप से विद्रोह कर उठा था। उस भूमि को पार करते ही श्रवण के भाव पूर्ववत् शुद्ध हो गये थे। यह उस कुरुक्षेत्र की भूमि का दोष था। क्रूरता का वातावरण वहा अपने आप हो जाता था। इसलिए कहा है कि विचारो का प्रभाव वायु-मंडल पर और वायु-मंडल का प्रभाव विचारो पर पडता है। यदि संकल्पों में शक्तिशाली व्यक्ति हो तो वह वायु-मंडल को बदल देगा और यदि वह कमजोर है तो वायु मंडल से प्रभावित हो जायगा।

आप जानते है तीर्थंकरो के समवशरण में सभी जीव अपना जन्म-जात वैर भूल कर प्रवचन सुनते थे। सांप और नेवला, शेर और बकरी सभी वहां शान्ति से एक साथ बैठ सकते थे। क्या कारण है? तीर्थंकरों की शक्ति को अतिशय का रूप दिया गया है। वे जहा वीराजते हैं, उसके आस-पास के क्षेत्र में इति-भीति, व्याधि-उपाधि, युद्ध, लड़ाई-झगड़े,

बीमारी, महामारी नहीं होती है। वैरभाव ही नहीं होता क्योंकि तीर्थंकरों के आभा मंडल के कारण वहाँ का वायु-मंडल प्रभावशाली हो जाता है। महर्षि पतंजली ने भी अपने पातंजल योगदर्शन में कहा है—

अहिंसा प्रतिष्ठायाँ तत्सन्निधौ वैर त्यागः ॥ ३५ ॥

अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस साधक के निकट सब प्राणी वैर का त्याग कर देते है। जहां अहिसा है वहां वैरभाव तिरोहित हो जाता है।

यदि आपके भीतर स्नेह का झरना है, प्रेम की धारा है तो आप अपने संकल्प विचारों के द्वारा क्रूर व्यक्ति को भी बदल सकते हैं।

प्रेम का अस्त्र और सर्प :

१०-१५ वर्ष पूर्व की घटना है देशनोक के श्री तोलाराम जी भूरा बड़े धार्मिक व्यक्ति थे। करीमगंज आसाम में उनका व्यापार था। अंधेरे में रस्सी समझ कर उन्होंने एक सांप को उठा लिया। ध्यान में आते ही उसे बाहर छोड़ दिया। नोकरों ने सांप को मारना चाहा। उन्होंने मना कर दिया। वे शाम को दुकान जा रहे थे। रास्ते से वे चल रहे थे। उनके पीछे वही सर्प आ रहा था। लोगों ने सेठ जी को चेताया और साप को मारना चाहा। अपनी अधिकार पूर्ण वाणी से सेठ जी ने लोगों को मना कर दिया। सेठ जी दुकान पहुचे। सर्प सीढ़ियों तक पहुंचा था। उन्होंने कहा मैने जान बूझ कर तुम्हें नहीं छेड़ा है। अनजाने हो गया। उन्होंने नवकार मन्त्र और भक्तामर का ध्यान किया। पन्द्रह मिनिट तक सर्प फन

फैलाये सीढियो पर बैठा रहा। सैंकड़ों व्यक्ति सड़क पर खड़े खड़े यह दृश्य देख रहे थे। ध्यान समाप्त कर सेठ जी ने अपने पैर का अंगूठा सर्प के सामने बढाते हुए कहा "लो, अपना बदला ले लो।" सर्प नमस्कार करके लौट गया। यह घटना स्वयं तोलाराम जी ने मुझे बताई। मुझे विश्वास नही हुआ। मैंने उनके मुनीमजी से पूछा–तो उन्होंने कहा—"महाराज, इस घटना को देखने वाले वहां पचासों आदमी थे। श्री तोलाराम जी मे गजब का आत्मबल है।" बन्धुओ! यह दृढ संकल्प, निर्भयता और आत्म-विश्वास की शक्ति है, जो कठिन से कठिन समय में भी अपना प्रभाव बताती है और क्रूर प्राणी को भी बदल देती है।

अनेक असाध्य बीमारी ग्रस्त रुग्णों को वैद्यराज बार-बार कहते है—"तुम बीमार नही हो। तुम्हें कोई बीमारी नही।" और यदि रुग्ण भी यह संकल्प कर ले कि मुझे कोई बीमारी नही, तो उन्हे अल्प समय में ही तन्दुरुस्त होते देखा गया है। उल्टे जो तन्दुरुस्त है, यदि उनके दिमाग में बैठ जाये कि मुझे रोग हो रहा है, तो कोई बीमारी न होते हुए भी वे अल्प समय में ही रुग्ण बन जाते हैं। यह मनोविज्ञान का सिद्धान्त है। जो जैसा ध्यान करेगा वैसा ही बन जाता है। जैसा संकल्प होगा वैसा ही आपका जीवन होगा, आपका व्यवहार होगा। आपके सकल्प गलत होगे, तो वैसा ही वायु-मंडल बनेगा, संतति पर असर होगा और इस रूप में आप पूरी पीढ़ी को गलत दिशा में ले जायेगे। धर्म साधना की भूमिका-रूपी व्यावहारिक जीवन और कर्तव्यो पर भी विचार करें।

व्यावहारिक जीवन और धर्म :

ठाणॉग सूत्र में १० प्रकार के धर्म कहे गये हैं—

गाम धम्मे, नगर धम्मे, रटठ धम्मे, कुल धम्मे, गण धम्मे-ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म, कुल धर्म आदि।

जिस परिवार में, जिस ग्राम में, जिस नगर में आप रहते है, उसके प्रति भी आपका कुछ कर्त्तव्य होता है। आपका कर्त्तव्य है कि परिवार ग्राम नगर के बच्चों पर अच्छे और धार्मिक संस्कार हों। उनका व्यावहारिक और नैतिक जीवन शुद्ध बने। इसके लिए योग्य भूमिका बनाने का उत्तरदायित्व आपके ऊपर है।

बच्चा गर्भ में होता है, तब से ही उस पर संस्कार पड़ने शुरू हो जाते है। गर्भावस्था में यदि माँ तामसिक पदार्थों का भोजन करेगी, आचार-विचार, खान-पान में शुद्धता नहीं रखेगी तो गर्भस्थ बालक पर भी ये सूक्ष्म संस्कार हो जायेंगे और वह बालक बड़ा होकर वैसे ही व्यवहार करेगा। बच्चों के संस्कारों के प्रति आपको सजगता वर्तनी चाहिए। आप दिनभर कमाई में लगे रहते है। बहनें चौका चूल्हा, गपशप, साज शृंगार में लगी रहती है। कभी आप बच्चों को एक घण्टा अपने पास लेकर बैठते हैं? कभी आपने बच्चों से पूछा कि उन्होंने दिन भर क्या किया? कभी आपने उन्हें धार्मिक पाठ पढ़ाये? कभी धार्मिक कहानियां उन्हें सुनायीं? आपके बच्चों को २५ अभिनेता-अभिनेत्रियों के नाम अवश्य मालूम होंगे। पर क्या २४ तीर्थंकरों के नाम भी याद हैं? इसका मतलब है आप बच्चों के संस्कारों के प्रति सजग नहीं हैं। एक ऐतिहासिक घटना याद आ रही है—

दूध के संस्कार एक मार्मिक घटना :

जोधपुर के महाराजा यशवन्तसिहजी थे। निकट के

एक राजा के साथ युद्ध का मौका आया। दुश्मन शक्तिशाली था। यशवन्तसिंहजी की हार होने लगी। वे लड़ाई से भाग निकले। महाराणी को खबर मिली। उसने नगर रक्षकों को आज्ञा दी, महाराज युद्ध में गये हैं। नगर मेरे अधिकार में है। मेरी आज्ञा है नगर के सारे दरवाजे बंद कर दो। मेरी इजाजत के बगैर दरवाजे न खोले जायं। महाराजा नगर को लौट आये, परन्तु नगर के दरवाजे नहीं खुले। महाराजा दरवाजा शीघ्र खुलवाने के लिए चिल्ला रहे थे, दरवाजे के परकोटे पर खड़ी महाराणी बोल रही थी "मेरे पति युद्ध में गये है। राजपूत युद्ध से भाग कर नही आते। युद्ध से भाग आने वाला मेरा पति नहीं हो सकता।" महाराज सेना की टुकड़ी के साथ सात दिन तक भूखे प्यासे नगर के बाहर बैठे रहे।

आखिर बात राजमाता तक पहुंची। उसे दया आई। आखिर मां का हृदय था। राजमाता की आज्ञा महारानी टाल न सकी। दरवाजे खोले गये। महाराजा महल में आये और महारानी से कहा—"क्या सबके सामने मेरा अपमान करना उचित था?" महारानी नें जवाब दिया—"आप मान अपमान की कीमत समझते तो कायर बन दुम दबाकर युद्ध से भाग कर नहीं आते।" महाराजा ने कहा—"तो क्या मै मर जाता तो ठीक होता?" राणी ने जवाब दिया—"महाराज, वीरो की तरह मरना भी आपने नही सीखा। मरना भी एक कला है।"

अंत में राजमाता ने कहा—"बहूरानी! अब बहुत हो गई। बेटा सात दिन से भूखा है, इसे कुछ खिला दो।" महारानी स्वयं हलवा बनाने लगी। आटा सेकने के लिए कढाई में खुरपी चल रही थी। खटाखट की आवाज सुनकर

राजमाता ने जरा व्यंग्य के स्वरों में कहा—"बहूरानी! युद्ध में लोहे की खटाखट से डर कर तो बेटा यहां आकर बैठा है। यहां भी तुम खटाखट कर रही हो, अब यहां से यह कहां जा कर छिपेगा।"

महाराजा को बातें चुभ गयी। वे राजमाता के चरणों में गिर पड़े और भाग आने की क्षमा मांगी। राजमाता ने कहा, "बेटा यह तुम्हारा दोष नहीं। यह मेरी ही गलती का परिणाम है। तुम छोटे थे। मैं तुम्हें दूध पिला रही थी। बीच में ही किसी काम से तुम्हारे पिता जी ने आवाज दी, मैं तुम्हें छोड़ बाहर चली गयी। दासी ने अपना दूध तुम्हें पिलाकर चुप किया। लौट आने पर मुझे मालूम हुआ, तो उल्टी करवा-कर वह दूध निकलवाया। जो थोड़ा-सा अंश रह गया था, उसी के कारण तुम में कायरता आ गयी। बेटा, मुझ सिंहनी का दूध पीते तो यह कायरता नहीं आती।"

संस्कार बालकों में :

इस दृष्टान्त से पता चलेगा कि पुराने जमाने में मातायें दूध के प्रति कितनी सावधान रहती थी। आज बकरी का दूध, पाउडर का दूध बच्चों को मिल रहा है। माताएं अपने बच्चों को अपने बदन पर नहीं पिलाती। बदन पर पिलाने से सौन्दर्य में न्यूनता आती है। ऐसी धारणा सर्वत्र फैल रही है। पाश्चात्य संस्कृति का यह गलत प्रभाव आप पर छा रहा है। बच्चों के प्रति आप उदासीन बने हुए हैं। उनकी उपेक्षा कर रहे है। लापरवाही बरत रहे है। भविष्य के खतरे का आभास भी आपको नहीं हो रहा है। संतान से आप बड़ी-बडी अपेक्षायें रखते हैं। लेकिन जा रहे है आप विपरीत दिशा में। सिर्फ

बच्चों को जन्म देना इतना ही माता-पिता का कर्त्तव्य नहीं है। उन पर योग्य संस्कार हो। जीवन जीने की कला उन्हे सिखाई जाय। विनय और सेवा भाव को जन्म घूंटी उन्हें पिलाई जाय। घर में संस्कार होते है वैसे स्कूलो मे भी संस्कार पड़ते है। स्कूल में तो विभिन्न जाति, धर्म, उम्र, खानपान, आचार-विचार वाले अन्य छात्रों के सम्पर्क में बच्चा आता है।

आप अपने बच्चों को कॉन्वेट स्कूल में भरती करने में अपना गौरव और प्रतिष्ठा समझते है। क्या माता-पिता की भक्ति के सस्कार वहाँ है ? क्या धार्मिक अध्ययन वहां है ? अल्हड़ बीकानेरी की ये पक्तियां है—

कॉन्वेट में पढा है, मेरे देश का सपूत।
सिर पर तभी से सवार है अंग्रेजियत का भूत।
हिन्दी को समझा है उसने कन्या कोई अछूत,
इंगलिश मे आया फर्स्ट और हिन्दी में फेल है।
भगवान की लीला है यह, कुदरत का खेल है॥

जैन दर्शन में पुण्य ९ प्रकार का बताया है। मन के शुभ सकल्पो से भी पुण्य होता है। मधुर और इष्ट वाणी से भी पुण्य होता है। नमस्कार ही कर लिया तो भी पुण्य का बंध हो गया। आप स्वय जानोगे व बच्चों को सिखाओगे तो आपकी पीढी का भविष्य भी चमक उठेगा।

एकाउन्ट मिलावें :

आप प्रतिदिन दुकान पर रोजनामा मिलाते हैं। हिसाब मे गड़बड़ी हो तो बेचैन हो जाते हैं और हिसाब दुरुस्त नहीं

होता तब तक नींद भी नहीं लेते। कभी पुण्य और पाप कर्मों का हिसाब भी आपने प्रतिदिन मिलाया ? कभी विचार किया कि मन की शक्ति का कितने मिनिट सदुपयोग किया ? किसी कवि ने कहा है—

जिदगी मां केटलु कमाणां रे, जरा सरवालो मांड जो
लाव्या था केटलो ने लई जवानो केटलो
आखर तो लाकडा ने छाणा रे। जरा सरवालो मांड जो।

इन पंक्तियों से हम कुछ नसीहत ग्रहण करें। सजग बने। सावधान रहें। शक्ति का उपयोग सृजनात्मक हो विध्वसक न हो। सम्यक् का हम निर्माण करें। मिथ्यात्व का विध्वंस करें। मन का उपयोग सही दिशा में किया तो जीवन में आनन्द और अपूर्व शान्ति छा जायगी। जीवन निरर्थक बह रहा है। शक्ति का अपव्यय हो रहा है। जीवन प्रवाह को हम योग्य दिशा में मोड दें। उसे सही दिशा दे दें। आगमों में कहा है—

"सोही उज्जुअभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।
उत्तरा–३–१२

सरल आत्मा की शुद्धि होती है और सरल आत्मा में ही धर्म स्थिर रह सकता है।

धुलिया क्षेत्र भाग्यवान है। राजमार्ग पर स्थित है। संत सतियों के आवागमन का लाभ आपको सहज रूप से मिलता रहता है। बिना बुलाये ज्ञानगंगा घर आ जाती है।

आचार्य भगवन् जैसी समता विभूति का आपके यहां पर सहज ही पदार्पण हो रहा है। इस ज्ञानगंगा में स्नान करेंगे, शुद्ध बनेंगे, अपना जीवन सरलता में ढालेंगे तो आपके जीवन का राजमार्ग भी मंगलमय बन सकेगा।

धुलिया :
२८ अप्रैल १९८४



७

योग : एक परिभाषा

[1]भक्ति प्रभु की तू करले ओ प्राणी,
कुछ ही दिनों की यह जिन्दगानी ।
जाना यहां से तुझे तो ओ बन्दे,
अगले जन्म को ले कुछ तो निशानी ।।

कहाँ से तू आया, जाना कहाँ है,
रहेगी क्या तेरी सदा ये रवानी ।
भक्ति भलाई यदि कुछ न की तो,
रहेगी न तेरी यहां कुछ कहानी ।।

खोया है बचपन खिलौनों में तने,
भोगों के संग लुट गई जवानी ।
फिर भी न सम्भला तू, आया बुढ़ापा,
बगिया बनी ये तेरी वीरानी ।।

खाना कमाना व बच्चों का पालन,
चिड़िया भी करती है बन कर सयानी ।

1. तर्ज—बहारो की महफिल सुहानी रहेगी....।

ज्ञान योग में और जब योग में चरम परिणति होती है उस समय इन सब योगों का सहज योग में परिणमन हो जाता है।

मन की साधना–सहज योग :

इस दृष्टि बिन्दु से प्रभु महावीर की साधना पद्धति सहज योग पर अधिक बल देती है। भगवान महावीर ने हठ योग, कर्म योग और राज योग पर बल नहीं दिया। उन्होंने सहज योग पर बल दिया है। आप कहेंगे कि सहज योग किस चिड़िया का नाम है। पहली बात तो यह है कि हम योग को ठीक तरह से समझ लें। योग शब्द का शब्दार्थ- "युंजनं योगः" जोड़ने को योग कहते है। मैथेमैटिक्स या गणित के हिसाब से हम देखते हैं कि दो प्लस दो-चार, दो और दो का योग चार होगा। जोड़ने की क्रिया-प्रक्रिया है योग। अब इस योग शब्द के कुछ आध्यात्मिक अर्थ अलग हैं और उसकी विभिन्न परिभाषायें हमारे समक्ष आई है।

आध्यात्मिक दृष्टि से महर्षि पतंजली ने योग की परिभाषा दी—"योगश्चित्त वृत्ति निरोध–" योग का अर्थ है चित्त-वृत्तियों का निरोध करना। इसके बाद इस परिभाषा का परिष्करण हुआ, संशोधन हुआ। एक आचार्य ने कहा "योगः अशुभ चित्त वृत्ति निरोधः" योग का अर्थ है चित्त की जो अशुभ वृत्तियाँ हैं उन अशुभ वृत्तियों को रोक देना। यह परिभाषा भी समीचीन नही बन पाती है, क्योंकि चित्त की वृत्तियाँ रुकेंगी नहीं। चित्त वृत्तियों का स्वभाव है बहते रहना। मन का स्वभाव है मनन करना चित्त का स्वभाव है चिन्तन करना। मन को गति करने से रोक नहीं सकते। चित्त

को चिन्तन करने से रोक नहीं सकते । मन हमेशा बहता ही रहता है, बहता ही रहेगा । उसे रोका नही जा सकता ।

हमारी साधना पद्धति इतना संकेत करती है कि आपका चित्त रुकेगा नहीं । आप उसको कुछ अच्छी दिशा दे दीजिये, दूसरी दिशा में ले जाइये, अशुभ से शुभ में ले जाइये । इस योग की परिभाषा का गम्भीर चिन्तन हुआ, सदियों तक चिन्तन हुआ । वर्तमान आचार्य श्री ने इस पर गम्भीर चिन्तन किया और उसके आधार पर योग की परिभाषा निकली "योगश्चित्त वृत्ति संशोध" योग का अर्थ है चित्त की वृत्तियों का शुद्धिकरण करना । जो हमारा चित्त अशुभ दिशा में दौड़ रहा है, विपरीतियों और विषमताओं में दौड़ रहा है, विसंगतियों में दौड़ रहा है, उस मन को मोड़ कर आप प्रशस्त दिशा प्रदान कर दें, एक शुभ दिशा इसे मिल जाय वह हमारे योग की साधना बन जायेगी । मन को दिशा देना सहज बात नही है । मन की समस्याओं को लेकर हजारों वर्षो से जिज्ञासाये उत्पन्न होती रही है ।

मन एक अश्व :

भगवान् महावीर के समय में और उनके पूर्व समय में भी मन के विषय में जिज्ञासायें चलती रही है । स्वय केशी श्रमण जो प्रभु पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा में थे, उन्होंने गणधर गौतम के समक्ष प्रश्न रखा—

"मणो साहसीओ भीमो दुट्ठसो परिधावइ ।"

यह मन रूपी अश्व बड़ा दुष्ट है । कभी दौड़ रहा है कभी बहक रहा है । इस दुष्ट घोडे को कैसे वश में किया जाता है ?

इधर गीता में वर्णन है कि अर्जुन मन की समस्या से परेशान होता है और कृष्ण के समक्ष प्रश्न रखता है—

"चंचल हि मनः कृष्ण ! प्रमाथिबलवद्दृढ़म् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।'

हे कृष्ण ! मन बड़ा चंचल है । वायु के समान वेग वाला है, इसको कैसे वश में किया जाय ? एक तरफ मन को घोड़े की तरह दौड़ने वाला कहा जा रहा है । दूसरी तरफ मन को पवन कहा जा रहा है । जरा इन उपमाओं पर चिन्तन करें । हमें घोड़ा कैसा पसन्द आयेगा ? आप तेज रफ्तार वाला चंचल, हवा से बाते करने वाला घोड़ा पसन्द करेंगे या अड़ियल घोड़ा, जो कही पर अड़ कर खड़ा हो जाता है । आप स्पष्ट कहेंगे चंचल घोड़ा चाहिये हमें, तेज रफ्तार वाला जो हवा से बातें करने वाला हो । अड़ियल घोड़ा लेकर क्या करना है ।

तो जब मन को घोड़े की उपमा दी है तो मन भी चंचल और तेज रफ्तार से भागने वाला चाहिये । अड़ियल घोड़ा पसन्द नही आता तो मन भी अड़ियल नहीं होना चाहिए, तेज गति वाला हो । लेकिन जैसे घोड़ा इधर उधर भागता है, इस घोड़े को वश में करने वाली लगाम या वलगा हाथ में रहती है । इसी प्रकार मन का घोड़ा गतिशील है, तेज रफ्तार वाला है लेकिन ज्ञान रूपी लगाम हाथ में रहे । जिस दिशा में दौड़ना चाहें, उसी दिशा में दौड़े, विपरीत दिशा में नहीं जावे । तो मन को साधने का मतलब होगा कि मन को इधर-उधर भागने से बचा कर अच्छी दिशा दे दे ।

साधना का मार्ग दे द ताकि वह अनवरत साधना के मार्ग पर दौड़ता चला जाय। विषय वासना, अहकार छल कपट में नहीं जावे।

गीता में मन को पवन कहा है। आप कल्पना करिये कि हवा एक क्षण के लिए रुक जाय तो संसार की क्या दशा होगी। हवा के प्रवाह की तरह हमारे चित्त की वृत्तियाँ इधर उधर बह रही हैं उनको शुद्ध बनाने के लिए विशुद्ध दिशा दे दे। यह तो योग की शाब्दिक परिभाषा हुई। हमारी साधना का चरम लक्ष्य तो है हम इस सबसे ऊपर उठ कर सहज योग में पहुच जावे। जैन शास्त्रों में योग की परिभाषा है—

काया वाङ्मन : कर्म योग :

मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को योग कहा है। यह प्रवृत्ति अशुभ भी हो सकती है, शुभ भी। इसलिए इसे अशुभ प्रवृत्ति को रोक कर शुभ प्रवृत्ति में ला सके। यहाँ "योगश्चित्त वृत्ति संशोध" की परिभाषा फिट बैठ जाती है। सहज योग की बात में यह तथ्य है। सहज योग का अर्थ है हम जिस क्रिया में हैं उसमें खो जायें। हमारे मन की सारी प्रवृत्तियाँ इसके प्रति समर्पित हों। हम खाना खा रहे हैं उसको पचाने में चित्त का सहयोग हो और यह विवेक हो कि हम संयम की पुष्टि के लिए, सद् वृत्तियों के पोषण के लिए खा रहे हैं। जिस काम में लगे हुए है सर्वताभावेन उस कार्य के प्रति समर्पित हो जाते हैं, सजगता पूर्वक तो वह साधना योग साधना बन जायेगी, जिसे हम सहज योग कहते हैं।

प्रभु महावीर ने साधु चर्या, श्रावक चर्या का विधि-विधान बताया है। वह अधिकांश सहज योग का विधि-विधान है। हमारा सारा चिन्तन इस विषय के प्रति समर्पित हो। आज अधिकांश लोगों में वह एकाग्रता, तन्मयता, तल्लीनता नही दिखाई देती। मन हमारा विशृंखलित बिखरा हुआ है। हम खाना खा रहे है, लेकिन मन दुकान की ओर जा रहा है। दुकान पर बैठे है तो मन घर की ओर भाग रहा है। एकाग्रता नही आ पा रही है। आज का वायु मण्डल, वातावरण कुछ इस प्रकार का बना हुआ है कि इसमें साधना हो पाना बहुत कठिन है।

केवलज्ञान और आज का वातावरण :

एक प्रश्न बार-बार उठता है—अनेक व्यक्तियों के मानस में उठता है कि महाराज, आज के जमाने में मोक्ष क्यों नहीं होता, मुक्ति क्यों नही होती ? केवलज्ञान क्यों नही होता ? लेकिन बन्धुओं, यह विचारणीय विषय है। जिस वातावरण में जिस माहौल में हम जी रहे है, कई बार विचार उठता है कि यह साधनागत वातावरण ही नहीं है तो केवलज्ञान तो बहुत दूर की बात है, क्षणिक मानसिक शान्ति भी मिलना कठिन है। आज हमारे इर्द-गिर्द कैसा माहौल है, कैसा वातावरण है। आज आप घरों में बच्चों को किस प्रकार के संस्कार दे रहे है ? उन्हें किस प्रकार का वातावरण दिया जा रहा है ? छोटे-छोटे बच्चे हैं और उनके माता पिता कैसा-कैसा व्यवहार उनके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। बच्चे उनकी नकल करते हैं और इसी कारण पूरी परम्परा—पीढ़ी बिगड़ती जाती है। यह टी.वी, वी. डी. ओ., आप इस

नहीं । जब वातावरण इस प्रकार का बन जाता है तो साधनात्मक स्थिति का वायु मण्डल नहीं बन सकता । ऐसी स्थिति में क्या आशा करें कि साधना, आराधना विशुद्ध रह पायेगी जैसे संस्कारों की स्थिति में बच्चे-बच्चियां पल रहे हैं। ८, १० वर्ष के बच्चे-बच्ची माता-पिता के अभाव में घर में भी चल चित्र देखेंगे उनकी कापी करेंगे, नकल करेंगे ।

अपनी फ्लैट के बाहर मैदान में एक बच्ची एक बच्चे पर हाथ उठा रही थी । पड़ोस की महिला आई, उसने पूछा कि क्यों राजू संगीता लड़ क्यों रहे है ? तो उसको जबाव मिला "हम लड़ कहाँ रहे है, हम तो मम्मी डैडी के एक्टिंग का रिहरसल कर रहे हैं ।" उनके मम्मी डैडी घर में ऐसा ही करते होंगे, एक दूसरे पर हाथ उठाते होंगे । बच्चे-बच्ची वही काम करेंगे जैसा घर में देखेंगे । इस रूप में यह विचारणीय समस्या है । आज साधनात्मक एटमोसफियर प्रायः नहीं मिलता है । पाश्चात्य संस्कृति का अनुसरण करने में हम तेज है, नकल करने में माहिर है लेकिन हमारी सस्कृति जो त्याग की संस्कृति है, आराधना, उपासना की संस्कृति है, उसको भूलते चले जा रहे है ।

अपनी संस्कृति :

सन् ७५ में मेरा चातुर्मास उदयपुर में था । उस समय वहां पर डागलियाजी जो आपको अभी गीतिका सुना गये हैं, वहाँ पर आये थे । साथ में बच्चे-बच्ची थे । एक होटल में ठहरे । उस होटल में एक अंग्रेज महिला ठहरी हुई थी । डागलियाजी ने अपने छोटे बच्चों से कहा कि जाओ मैडम से

गुड मॉर्निंग करो। वह बच्चे महिला के पास गए और कहा – "मैडम गुड मॉर्निंग।" उस अंग्रेज महिला ने उत्तर दिया "नमस्ते कहो, क्या तुम्हारी संस्कृति मर गई जो गुड मॉर्निग कह रहे हो।" देखिए वे लोग कितना ध्यान रखते है आपकी सस्कृति का और आप कितना ध्यान रख रहे है अपनी सस्कृति का ? यह विचारणीय वात है। कैसा वातावरण बन रहा है और हम चाहें मुक्ति मिल जाय। केवलज्ञान तो दूर रहा वर्तमान जीवन में शान्ति से नही रह सकते और अगला जीवन नही सुधर सकता। जीवन में निरन्तर पाप कार्य हो रहे है। जो जो हमारी क्रियाये होंगी उनकी प्रतिक्रियायें होंगी। जो जो एक्शन होगा उसका रिएक्शन होगा। क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का सिद्धान्त वैज्ञानिक सिद्धान्त है। जो कर्म कर रहे है उनके फल का सिद्धान्त शाश्वत सत्य है। हम जो क्रियाये कर रहे है, कितना कर्म बन्धन हो रहा है। जो कर्ज ले रहे है उसको चुकाना पडेगा ही। शास्त्रीय दृष्टि के अनुसार कई भवो के वाद चुकायेगे। यह नहीं होगा कि आप उसको हजम कर जायेगे। अन्दर में जो कर्म वन्धन हो गया, कर्जा हो गया है उसको चुकाना पड़ेगा। एक छोटी सी घटना का उल्लेख पढा।

कर्ज अदायगी :

एक व्यापारी को व्यापार में बड़ा लॉस—नुकसान लगा। नुकसान के कारण वह परेशान हो गया। लाखो का घाटा हो गया। फिर भी सम्राट के सामने उसकी प्रतिष्ठा थी, इज्जत थी। वह सम्राट के पास गया और अपनी स्थिति का उल्लेख किया। सम्राट ने कहा तुम मेरे नगर के प्रतिष्ठित नागरिक

हो। जितना पैसा चाहो उतना ले जाओ। उसने एक लाख रुपये सम्राट से उधार ले लिए और लेकर चला जा रहा था अपने घर। भावावेश से उसके मन में विचार पैदा हुआ कि अब सम्राट कहां पूछने वाला है, कहां मांगने वाला है। अपने को सब रुपया हजम कर जाना है, बैठे-बैठे खाना है, व्यापार वगैरा कुछ नहीं करना है। मेरी जिन्दगी आराम से निकल जाएगी, बच्चों की भी निकल जाएगी। अब चुकाना कुछ नही है। उसकी नीयत में फर्क आ गया। मन में बेईमानी आ गई।

बन्धुओ, याद रखो कि ईमानदारी और पसीने की कमाई का पैसा मानसिक शान्ति देगा, लेकिन अनैतिकता से उपार्जित पैसा शारीरिक सुविधायें जुटा देगा, फैसिलिटी के साधन हो जायेंगे, लेकिन शान्ति नहीं मिलेगी। पैसे से मखमल के गलीचे खरीद लेंगे, बढ़िया भवन बना सकेंगे, एयर कन्डीशन्ड प्लान्ट लगा लेंगे सब कुछ खरीद सकते है, लेकिन मन की शान्ति नहीं खरीद मकते, मानसिक शान्ति नहीं मिल सकती। आज आप अच्छे-अच्छे करोड़पतियों को देखे—उनको सुख सुविधायें हैं लेकिन कहीं भाई-भाई में आपस में तनाव है, कही पति-पत्नि में तनाव है, कही पिता-पुत्र में तनाव है मस्तिष्क में टैन्शन हैं। तनाव है। लेकिन जहाँ ईमानदारी की कमाई है, नैतिकता की इनकम है वहाँ क्लेश कम होगा। होगा तो आपस में निपट जाएगा। लेकिन ऐसा आज कौन सोचता है।

बैलों का कर्ज :

वह व्यापारी मन में बुरे विचार लिए हुए चला जा रहा था, उसका एक मित्र था तेली, रात्रि मे उसके घर पर

रुका, लेकिन उसको नींद नहीं आ रही थी। राजा से पैसा लिया उसे हजम करना है। मन में अनेक योजनाये तैयार कर रहा था। वह पशु की भाषा समझता था। उसके कान में आवाज आई। तेली के बैल आपस में बात कर रहे थे। एक बैल से दूसरा बैल कह रहा था कि हम पर इस तेली का कर्जा था। मैं तो आज रात को उसके कर्जे से मुक्त हो जाऊंगा और दूसरी योनि में चला जाऊगा। प्रातःकाल होते ही मुझे इस योनि से छुट्टी मिल जायेगी।

दूसरे बैल ने कहा कि मेरा भी कर्जा पूरा होने वाला है। मेरे पर तेली कर्जा मागता है। कुल एक हजार रुपया और माँगता है। वह एक हजार रुपया तेली को कल मिल सकता है। कल बैलो की जो दौड़ हो रही है। सम्राट ने दौड़ जीतने वाले बैल के लिए एक हजार रुपयों का इनाम रखा है। तेली मुझे अगर इस दौड़ मे भाग लेने के लिए उतार दे, मैं उसमे जीत जाऊगा तेली को एक हजार रुपये मिल जायेगे, मेरा कर्जा चुक जायेगा और मुझे भी इस योनि से मुक्ति मिल जायेगी।

दोनों बैलों की बाते उस व्यापारी ने सुनी और विचार करने लगा कि बड़ी अजीब सी बात है कि बैल पर एक हजार रुपया कर्जा है उसको चुकाने के लिए कितनी चिन्ता कर रहा है। उसने सोचा कि इन बैलो की बात सही है या गलत यह देखना चाहिये।

प्रातःकाल उसने देखा कि एक बैल मर चुका है। तेली को उसने बताया कि तुम्हारे बैल रात्रि में इस तरह की बात कर रहे थे। मैंने उनकी बातें सुनी है। उसका परिणाम है

कि एक बैल मर गया है। तेली ने कहा कि दूसरे का भी परिणाम देख लें। यह बैल आज रेस में दौड़ रहा है। हजार रुपये की शर्त पर तेली बैल को रेस में भाग लेने के लिए ले गया। बैलों की दौड़ हुई और तेली का बैल जीत गया। ज्यों ही एक हजार रुपये तेली के हाथ में आये कि वह बैल भी समाप्त हो गया, क्योंकि उसका कर्जा चुक गया था।

यह स्थिति उस व्यापारी ने देखी तो वह सोचने लगा कि गजब की बात है। कर्जा न मालूम किस रूप में लिया होगा। बैल बन कर कर्जा चुका रहा था। कितने वर्षों तक तेली की सेवा करता रहा। उसके विचारों में परिवर्तन आया कि मैं कहां पैसा हजम करने जा रहा था। न मालूम कितने वर्षो तक बैल के रूप में या और किसी रूप में कर्जा चुकाना पड़ेगा। यह बात सामान्य व्यक्ति के भी समझ में आ सकती है।

मैं बिहार में तेजपुरा की ढाणी के पास से निकल रहा था, पानी की कुछ बारीक बूंदे आने लगी। मैं वहां पर एक रेबारी के अहाते में उसकी अनुमति लेकर रुका। रेबारी पास में आया, बैठा और बात करने लगा। बात करते-करते उसने कहा कि महाराज, अमुक गांव में अमुक सेठ जी हम लोगों को बहुत ठगते है। मैने पूछा कि कैसे ठगते हैं? उसने कहा कि महाराज क्या करें, हमें ऊंटों के धन्धे के लिये रुपये चाहिये। हम उससे पांच हजार रुपये उधार लेते है तो वह शुरू में ही ६ हजार रुपये लिखवा लेता है जब कि हमको ५ हजार ही देता है। फिर ब्याज जोड कर ७ हजार कर देता है, ऐसे ठगता है। मैंने कहा कि वह ठगता है तो उससे क्यों

लेते हो ? गांव में और भी तो सेठ है ? उसने कहा कि हमें ऊट के धन्धे के लिये २०-२५ हजार रुपये एक साथ चाहिये, इतने रुपये दूसरा कोई दे नही सकता । मैने कहा कि हम क्या कर सकते है, हम तो उन लोगो को उपदेश ही दे सकते है कि नैतिकता से चलो, ईमानदारी से चलो ? वह रेबारी कहने लगा "महाराज, भगवान के घर से कैसे बचेगा, हम सब वसूल कर लेगे । अगले जन्म में सेठ को ऊट बनायेगे और ऊपर बैठ कर नकेल खीचेगे और सारा पैसा वसूल कर लेगे ।" उसने मुझे नकेल खीचने का एक्शन करके बताया । मै आश्चर्यचकित हो गया कि एक किसान भी कर्म सिद्धान्त को समझता है । कर्म सिद्धान्त के अनुसार यह बात सामान्य सी है । आज हम जो कर्म कर रहे है, वैसे वातावरण में चल रहे है उस वातावरण में कर्म बन्धन हो रहा है ।

कर्मो का कर्ज :

उस सेठ ने चिन्तन किया, विचार किया कि मैने जो राजा से कर्ज लिया है उसे किसी न किसी जन्म में चुकाना पडेगा । मैं उसे हजम करने की सोच रहा था, लेकिन हजम नही कर सकू गा । इस लिये राजा को वापस लौटा दू । बैलो की चर्चा सुनी उससे उसका हृदय वदल गया ।

हम वार-बार सुनते है किन्तु लगता है चिकने घड़े हो गये है इस लिये असर नही होता है । लेकिन बन्धुओ ! जो हलु कर्मी होते हैं उनके हृदय में टीस पैदा होती है कि क्या कर रहे है ।

हम इन बहुमूल्य क्षणो को किस कर्म बन्धन में लगा रहे है ? हमें सौभाग्य मिल रहा है । वीतराग वाणी की

आचार्य श्री के मुख से अमृत धारा बरस रही है। उसको आप श्रवण कर रहे हैं लेकिन अन्दर में कितनी पैठ रही है, इसका चिन्तन करें। अपने अशुभ कर्मों से बच सके उतना बचे। शुभ की साधना की ओर प्रेरित हो।

क्षेत्रीय चिन्तन :

पर्युषण के दिनों में आठ दिन तक ध्यान की साधना चलती रहीं, प्रवचन विधि की साधना चलती रही। बम्बई क्षेत्र के हिसाब से कहू तो इतनी अच्छी साधना कही नही हुई होगी। गांवों से तुलना करें तो उतनी अच्छी नहीं हुई। शहर के हिसाब से ठीक है। बम्बई में सबसे ज्यादा यहा हुई यह बिल्कुल ठीक है। यह आचार्य भगवन की तेजस्विता का महान प्रभाव है कि वे जंगल में भी बैठ जायें तो वहां भी धर्म ध्यान होता है, साधना होती है।

चातुर्मास पर्युषण तक ही होता है या आगे भी चलता हैं ? अभी तो ७० दिन बाकी है। एक धारणा बना रखी है कि "हुआ संवत्सरी का पारणा, छोडो सन्तों का बारणा" सन्तों का बारणा" का मतलब क्या यह है कि आप अपनी आत्मा को छोड़ देंगे, अधिक से अधिक जागरण हो। पर्युषणों में ८ दिन तक जो शक्ति की धारा मिली है, जो करैन्ट मिला है उसको आगे बढ़ावें। जितनी अधिक धर्म साधना आगे बढ़ेगी उतना ही जीवन आगे बढ़ेगा।

मैं आचार्य भगवन की उस देशना को, उस वाणी को अपने टूटे-फूटे शब्दों में आपके समक्ष रख गया हूं। आप इस पर चिन्तन-मनन करें और अधिक से अधिक कर्म बन्धन से

बच सक, ऐसा वातावरण निर्मित करें। सबसे बड़ी बात तो यह है कि आप अपनी पीछे की पीढ़ी को 'बदलें। एक व्यक्ति गलत होता है, अनैतिक आचरण में जाता है तो सारी पीढ़ी विपरीत हो जाती है। आप स्वयं मानते है कि एक व्यक्ति ने सामाजिक परिस्थिति के विपरीत काम किया, इन्टर कास्ट मैरिज की--अन्तर्जातीय विवाह किया तो उसके बाद क्या हालत होगी, उसकी सन्तति को कैसी हिकारत की दृष्टि से देखा जायेगा ? सामान्य वासना का आवेग इन्सान को कहाँ ले जाता है। हम इस वातावरण को वदले। कम से कम आप अपने वच्चों को टी. वी , वी. डी. ओ. से दूर रखे। इस वातावरण से संस्कार कैसे बन रहे है ? मेरा सकेत यह है कि कर्म बन्धन से वच सके ऐसा वातावरण बनावे। अगर यह स्थिति बनती है तो सहज योग की साधना एव आत्म आराधना सुगम हो जायेगी।

दिनाक १-६-१६८४
बोरीवली (पूर्व)
बम्बई।

८

जागरण

चेतन देव को जागरण का उद्‌बोधन करने वाला एक गीत है—

उठ जाग रे चेतन निदिया उड़ा ले मोह राग की ।। धृ ।।
कौन कहां से आया है तू जाना कौन मुकाम
किन सम्बन्धों में उलझा है सोच जरा नादान रे ।। उ. ।।
रिश्ते नाते कितने सच्चे कितना वैभव तेरा
क्या लाया क्या ले जायेगा कहता जिसको मेरा रे ।। उ. ।।
सुत दारा भगिनी बंधव सब मतलब के संसारी
स्वारथ में बाधा पड़ने पर देते तुझको गाली रे ।। उ. ।।
वीतराग वाणी के द्वारा कर तत्वों का ज्ञान
जड़ चेतन का भेद समझ कर अपना रूप पिछान रे ।। उ. ।।
तू ही तो अपना ईश्वर, है अन्तर्द ष्टि कर ले
शुद्ध सनातन "शांति" स्वरूपी दिव्य स्वरूप को वर ले रे ।।उ.।।

जागरण :

अनादि अनन्त काल से आत्म चेतना सोयी हुई है ।

इसीलिए जितने भी लोकोत्तर पुरुष हुए हैं, महात्मा हुए हैं, उन्होंने मानव को जागरण का सदेश दिया है। भगवान महावीर ने भी प्रथम देशना में साधक को संदेश दिया—

उत्थिए नोपमाए

साधक, उठो! जागृत हो जाओ। प्रमाद त्याग दो। अपनी अन्तिम देशना मे भी भगवान ने कहा—

सुत्थेसु यावि पडिवुद्ध जीवी।
न वीससे पंडीअ आसुपन्ने,
घोरा मुहुत्ता अबल सरीरं।
भारड पक्खीव चरे पमत्ते ।। उत्तरा ४-६ ।।

आशुप्रज्ञ पडित मुनि को चाहिए कि वह भारंड पक्षी के समान सदा प्रमाद रहित होकर शास्त्र विहित अनुष्ठानों का सेवन करें। प्रमादी लोगों में रहते हुए भी स्वय सावधान रहे। क्योकि काल निर्दय है और शरीर अशक्त है। वह अप्रमत्त होकर आचरण करे।

सुषुप्त चेतना :

हमारी चेतना, हमारी आत्मा सोयी हुई है। मिथ्यात्व, मोह, अज्ञान और निद्रा का आवरण हमारी आत्मा पर छाया हुआ है। वर्तमान मनोविज्ञान कहता है, २४ घण्टों में आदमी सिर्फ १६ मिनिट जाग रहा है। शेष समय वह सो रहा है। बात अटपटी लगेगी। लेकिन इसे समझ लो। आम आदमी १६ घण्टे जागता है। वह जागरण नही। बहुत सारे कार्य वह सुषुप्ति में ही करता है। अभी व्याख्यान से आप उठेंगे। आपके हाथ जेब में जायेंगे। साइकिल की चाभी निकालोगे,

साइकिल पर सवार होओगे, नुक्कड़ पर साइकिल अपने आप मोड़ लेगी, आप दुकान पर चले जाओगे। यह सारे काम नित्य के अभ्यास मात्र का परिणाम है। इसमें आपको कुछ सोचना नहीं पड़ता। यह अभ्यास की प्रवृत्ति है। इसे जागरण नही कहेंगे। हां! आप रास्ते चल रहे है। सामने कोई पिस्तौल तान के खड़ा हो जाय। आप कुछ सोचना शुरू करेंगे। यह जागरण अवस्था है। यह हुई मनोविज्ञान की बात।

निद्रा : द्रव्य और भाव :

अध्यात्मिक दृष्टि से जीवन में जागरण के क्षण बहुत कम आते है। निद्रा दो प्रकार की है। द्रव्यनिद्रा और भावनिद्रा। हम सोते है वह द्रव्यनिद्रा है। आत्मा से विमुख प्रवृत्तियां भावनिद्रा हैं। चौबीसों घण्टों में कितने क्षण आते हैं जब आप आत्मा के प्रति सजग होकर सोचते है? क्या हितकर है क्या अहितकर है—इस पर विचार करते हैं? बहुत सारे कार्य आपके जागते हुए भी जागृति अवस्था के कार्य नहीं। वे भावनिद्रा अवस्था के कार्य है भावनिद्रा से जागरण कब पैदा होता है? चेतना को झटका लगता तब आप भावनिद्रा से जाग उठते है।

विवाह बनाम व्याधि :

महाराष्ट्र के संत समर्थगुरु रामदास विवाह वेदी पर खड़े थे। मंत्रोच्चारण से विवाह विधि सम्पन्न हो रही थी। पंडित ने उच्चारण किया "सावधान" रामदास सावधान हो गये। विवाह मंडप से भाग निकले जंगलों में। "सावधान" इस शब्द ने बिजली के झटके (करंट) का काम किया। अर्थ

ने चेतना को जगाया। मैं किन बंधनों में फंस रहा हूं—मुझे सावधान होना चाहिए। आत्मा को बंधनों से मुक्त रखना है। रहीम की ये पक्तिया हैं—

रहिमन विवाह व्याधि है, सकहु तो लेउ बचाय।
पावन वेड़ी पडत है, ढोल वजाय वजाय॥

विवाह वंधन है। विवाह करने वाला नये कपडे पहनेगा, वनठनकर घोड़े पर सवार होगा, दूल्हा राजा कहलायेगा। लेकिन यह दो दिन का राजा है। दो दिन का नाटक है। क्योंकि अक्सर देखा जाता है कि आम तौर पर दो दिन के वाद वह जिन्दगी भर के लिए जोरू का गुलाम वन जाता है। पत्नी (Wife) की प्राप्ति के लिए विवाह है। और Wife के प्राप्त होते ही जिन्दगी भर की चिताओ को हमने आमंत्रण दे दिया। W-Worries, I-Invited, F-For, E-Ever तो वाइफ शव्द का विश्लेपरा हुआ 'Worries Invited for ever,' ससार के वंधनों में, विवाह के वंधन में हम पडते है, तब उन रेशम के कीडों के समान अपने आप स्वय के वनाये जाल में उलझ जाते है।

बंधन-अपने ही द्वारा निर्मित :

वस्तर जिले मे रेशम के कीडों की खेती होती है। यह कीडा अपने मुंह से लार निकालता है, जो धागे के समान होती है। इसी धागे से वह अपने ऊपर सुरक्षा के लिए एक खोल वनाता है और उसी मे मकडी जैसा बंदिस्त वन जाता है। इन कीड़ो को गरम पानी में उबाल कर रेशम का धागा तैयार किया जाता है। एक मीटर रेशम के लिए चालीस हजार से ज्यादा कीड़ों की हत्या होती है।

आप जैन हैं, चींटी की भी रक्षा करने का आपने प्रण लिया है। क्या आप रेशमी शर्ट, शेरवानी पहनते हैं ? आपके बच्चे रेशमी सूट पहनते हैं ? महिलाएं रेशमी साड़ियाँ पहिनती हैं आपके घरों में ढेर सारे रेशमी कपड़े मिलेंगे, जिन्हें पहनने में आप प्रतिष्ठा और गौरव का अनुभव करते हैं। कहां है आपका जैनत्व ? यह कपड़े आपके जैनत्व को बदनाम करने वाले काले झंडे हैं। महिलाओं को प्रसाधन में अधिक रस है। प्रसाधन की सामग्री जैसे शैम्पू, क्रीम, स्नो, नेल-पॉलिश वगैरह बाजार में प्राप्त होती है। अखबार उठा के देखो या ये चीजें बनाने वाले कारखानों में जाकर देखो, कितनी क्रूरता और हिंसा के परिणामस्वरूप ये चीजें आपको मिल रही हैं। मैं मूल विषय पर आता हूं। मानव स्वयं ही रेशम के कीड़े की तरह बंधन निर्माण करता है और स्वयं ही उसमें उलझता है। इन बंधनों में जागरण के क्षण कभी-कभी आ जाते हैं। रामदास स्वामी जैसे। जो उन क्षणों को पकड़ ले और जागृत हो जायं, वह संभल जाता है।

अद्भुत जागरण-सत्य घटना :

एक घटना याद आई। सत्य घटना है। गंगातट पर कई साधु बैठे थे। बातचीत चल रही थी। हरेक को वैराग्य क्यों और कैसे उत्पन्न हुआ इसका बयान वे दे रहे थे। उसमें का एक बयान भी आप सुन लीजिए—एक महात्मा ने आप बीती यों बताई—"मै कानपुर के पास एक देहात का रहने वाला कान्यकुब्ज ब्राह्मण था। सिर्फ मां थी जिसने पाला-पोसा, पढ़ाया, बड़ा किया। सौ एकड़ जमीन थी। फिर भी सेना में भरती हो गया। पदोन्नति करते हुए कर्नल बन गया। मा के आग्रह से और मां की पसंदगी से विवाह किया। मैं पूना में

और पत्नी कानपुर में रहने लगी। एक मात्र माता का छत्र था वह भी चला गया। सेना की नौकरी होने से छुट्टियाँ नहीं मिल पा रही थीं। नौकरी से इस्तीफा भी मंजूर नहीं हो पा रहा था। डेढ़ दो वर्ष यों ही व्यतीत हो गए। एक दिन अफसर अच्छे मूड में था, उसने इस्तीफा मंजूर कर लिया। अपने प्रावीडैंट फंड की रकम रुपये बीस हजार और ढेर सारा सामान लेकर कानपुर जाने के लिए ट्रेन में बैठा। पूना स्टेशन से ही एक व्यक्ति बार-बार मेरे डिब्बे में आता और उतरता था। बार-बार आता था इसलिए उसकी शक्ल ठीक से मेरे ध्यान में रह गयी। नागपुर तक वह दिखायी दिया। मै कानपुर उतरा शाम को। सारा समान घर में रखा भोजन कर सो गया। थकावट के मारे मुझे नींद लग गयी। करीबन आधी रात को किसी को जोरदार लात मुझे लगी। मै जाग बैठा। सामने देखता हूं तो वही व्यक्ति खड़ा था जिसे मैंने नागपुर तक देखा था। उसने एक हाथ से एक अपरिचित व्यक्ति को और दूसरे हाथ से मेरी पत्नी को पकड रखा था। थोड़ा होश संभालते ही मैंने पूछा—"भाई यह क्या मामला है ? कौन लोग हो तुम ?"

उसने जवाब दिया—"साहब हम तीनो आपकी जान के ग्राहक-शत्रु है—मै एक चोर हूं। चलती ट्रेन में चोरिया करना मेरा व्यवसाय है। आप बड़ी रकम लेकर जा रहे है यह सूचना मुझे मिली। मैं आपका बैग उड़ाने की फिराक में था। लेकिन सफलता नही मिली। अतः रात में जब आप भोजन कर रहे थे, तभी आपके घर में प्रवेश कर अलमारी के पीछे छिप गया था। आपको नींद लगी। लेकिन आपकी पत्नी जाग रही थी। थोड़ी देर बाद दरवाजे पर किसी की आहट हुई। आपकी

पत्नी ने दरवाजा खोलकर इन महाशय को अन्दर लिया। उनकी बातों से मुझे पता चला कि ये दोनों आपका काम तमाम कर, धन दौलत के साथ यहा से रफादफा होना चाहते थे। इस व्यक्ति के द्वारा लाये गये छुरे का वार आपकी श्रीमती आपके सीने पर करने जा रही थी। मुझे बरदाश्त नही हुआ। इन दोनों को पकड़ आपको लात मार जगाया। मैं चोर हूं। कसूरवार हूं। जो सजा देनी हो दीजिए।"

यह भी अपनी किस्म का एक अनोखा "सावधान" था। 'मेरी आत्मा जाग गयी। मैंने २० हजार का बैग चोर को दिया। पत्नी और सम्पत्ति उसके प्रेमी को दी। लूंगी और बनियान पर मैंने घर छोड़ा, गेरुए वस्त्र पहने'। बाद मे पलट कर भी नही देखा कि पत्नी और उसका यार क्या कर रहे है।" यह है मेरी कहानी।

भाइयो! यह कहानी बहुत कुछ बातें बोल गयी हैं। इस चोर के अन्तरग में हमें महात्मा के दर्शन होते है। वह कर्नल जिसका काम गोलिया चलाने का है उसके अन्तर में वैराग्य के अकुर निकल पड़े। क्षमा का आविर्भाव वहां नजर आया। पत्नी और उसके प्रियंकर को बगैर उपालंभ या सजा दिये उसने सारी सम्पत्ति उनको दे दी। यह था जीवन का अमूल्य क्षण। बिरले ही क्षण जागरण के क्षण होते है। वरना किसी कवि ने कहा है—

सोते सोते ही निकल गयी सारी जिन्दगी।
सारी जिन्दगी हो भैया सारी जिन्दगी॥ सोते॥
जन्म लेते ही इस धरती पर तूने रुदन मचाया।
आँखें भी तो खुल नहीं पायी, भूख भूख चिल्लाया।

खाते खाते ही निकल गयी सारी जिन्दगी ॥
बचपन खोया खेल कूद में यौवन पा बौराया ।
धरम करम का मर्म न जाना, विषय भोग मन भाया ।
भोगों भोगों मे निकल गयी सारी जिन्दगी ॥
धीरे-धीरे बढ़ा बुढ़ापा डगमग डोले काया ।
सबके सब रोगो ने देखो, डेरा खूब जमाया ।
रोगों रोगों में निकल गयी सारी जिन्दगी ॥
जिसको तू अपना समझा था, वो दे बैठा धोखा ।
प्राण गये पर जल जायेगा यह गाड़ी का खोखा ।
खोखा ढोते ही निकल गयी सारी जिन्दगी ॥

सुषुप्ति में बन्धन होते हैं । जागरण में कर्म बन्धन से बच सकते हैं । प्रमत्त और कषाय अवस्था ही कर्मबंध का कारण है और योगों की प्रवृत्ति भी कर्मबंध का कारण है। मजाक-मजाक मे बात-बात मे हम कर्म बांध रहे हैं। भगवती सूत्र में अधिकार आता है तन्दुलमच्छ का । एक चावल के दाने जितना मत्स्य था । उसने एक महाकाय मत्स्य को देखा जिसका जबड़ा खुला था और उसके जबड़े मे पानी के हिलोरे के साथ अनेक प्राणी अन्दर जाते थे और बाहर निकलते थे। तन्दुलमत्स्य को अध्यवसाय हुआ—"कितना मूर्ख है यह ! इसकी जगह मै होता तो सब जीवों को गटका जाता ।" उसने किया कुछ नही । लेकिन अपने विचार मात्र से सातवीं नरक में जाने योग्य घोरातिघोर कर्म बाधे ।

कर्म बन्धन भावनाओं से :

दिगम्बर साहित्य में उल्लेख है । महाराजा श्रेणिक

भगवान् महावीर के दर्शनार्थ निकले। रास्ते में एक नवजात बालिका पड़ी थी। साँस चल रही थी लेकिन उसके शरीर से भयंकर दुर्गन्ध आ रही थी। श्रेणिक दूसरे रास्ते से महावीर के पास पहुंचे। उत्सुकतावश उस बालिका की अवस्था का कथन किया और भगवान से उसके अतीत के बारे में पूछा। भगवान ने फरमाया-यह कर्मों की लीला है।

सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णा फला भवंति।
दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णा फला भवंति॥

बालिका पूर्व जन्म में धनश्री नामकी श्रेष्ठी पुत्री थी। रूप और सौन्दर्य पर भयंकर गर्व था, अहंकार था। मुनिराज गोचरी के लिए पधारे। उनके मलिन वस्त्र देखकर इसने घृणा कीं और दुर्गन्धनाम कर्म बांधने के कारण यह जन्म से ही दुर्गंध युक्त पैदा हुई। यह दुर्गन्ध बरदाश्त न होने के कारण उसकी माँ नगर वधू ने ही उसे रास्ते पर छोड़ दिया है। श्रेणिक ने पूछा—"भगवन् इसका भविष्य क्या है?" भगवान् ने कहा, श्रेणिक, यह आपकी राणी बनेगी। आप चौपड़ खेलते हुए हारोगे, और शर्त के मुताबिक यह आपको घोड़ा बनाकर पीठ पर, सवार होएगी। इस घटना से आप उसे पहचान पाओगे। जैसा भगवान ने फरमाया, वैसे ही घटनायें आगे चल कर घटीं। हुआ यों कि उस बालिका के कुछ समय का ही दुर्गन्ध नाम कर्म का उदय हुआ था। अतः फिर सामान्य स्वस्थ हो गई। एक निःसंतान जुलाहा उसे उठा ले गया। एक उत्सव में सम्राट् श्रेणिक ने उसे देखा, जिसका नाम दुर्गन्धा से गजगधा हो गया था। और उसने अभय कुमार के द्वारा उसे अपने पिता से याचना करके विवाह कर लिया।

जब राजा घोड़ा बना और रानी ने उस पर वस्त्र डाला तो राजा को प्रभु महावीर की बात याद आ गई और वे हंस पड़े। रानी ने हसी का कारण पूछा। अपनी अतीत की घटना सुन कर उसे वैराग्य हो आया। मन के अध्यवसायों के जो परिणाम होते है और उनसे जो कर्मबंध होता है उस पर इस दृष्टांत से काफी प्रकाश पड़ता है।

ज्वलंत सामाजिक समस्या–दहेज :

कर्म बंध के क्षेत्र में आज की सामाजिक परिस्थितियों की काफी भूमिका है। आज की सामाजिक परिस्थितियां बड़ी विचित्र हो गई है। दहेज प्रथा को ही ले—आज लड़की पैदा होती है तो सारे पारिवारिकजन चिन्ताग्रस्त हो जाते है। दहेज का भूत सामने खड़ा हो जाता है। लडका हुआ तो नोटों की कमाई हो जाती है। मध्यम वर्ग को लडकी के कारण दिन में तारे नजर आते है। दहेज प्रथा के कारण हिसा, हत्या, अत्याचारो से प्रतिदिन के अखबार भरे पडे है। जैन, अजैन सभी समाजों में यह दहेज का भूत पनप रहा है। कौन है इसके जिम्मेदार ? समाज का हर व्यक्ति इसके लिए जिम्मेदार है। क्योकि उससे ही इस प्रथा को पोषण एवं अनुमोदन मिल रहा है। लड़की के विवाह में हम दहेज प्रथा की भयंकरता के रोने रोते है और अपने पुत्र के विवाह में चुप्पी साध लेते है। दंभ हैं हमारे आचरण में। मैंने एक गीतिका में थोड़ा-सा व्यंग्य किया है—

दहेज:—

सादगी से शादी हम शाह जी, रचा रहे।
कन्या हो सुशील बस यही हम चाह रहे ॥टेर॥

गौरवर्णी सुन्दर कद सरल विनीता हो,
कोकिलकंठी कमलनयनी मधु गीता हो ।
कलाओं में दक्ष हाथ जिसके सदा रहे ॥ १ ॥

धन की ना कभी हमें, मील मालिक हम हैं ।
लखपतियों की गणना से नहीं कम है ।
विद्यावती गुणवती कन्या हम चाह रहे ॥ २ ॥

लन्दन अमेरिका में लड़के है पढते,
एल-एल. एम., एम. डी. की उपाधियां वरते ।
बैरिस्टर डॉक्टर बनेंगे बता रहे ॥ ३ ॥

लड़की भी लॉ या फिर एम. बी. बी. एस. हो,
मधुर हो नेचर और मन भावन फेस हो ।
बस ऐसी कन्या हो धन की न चाह है ॥ ४ ॥

घूमने का शौक है आपके दामाद को,
मांगता है एक इंपोर्टेड कार वो ।
टेलीविजन सैट की साथ में दरकार है ॥ ५ ॥

फॉरेन का रेडियो, फ्रीज भी तो लेगा वह,
लैंप सैट सोफा सैट घटिया न लेगा वह ।
शादी में दे दीजिए और दरकार है ॥ ६ ॥

दहेज लेने की तो कसम हमने खाई है,
इसलिए पैसा कौड़ी की न सुनवायी है ।
लेकिन शान का तो ध्यान आपको बना रहे ॥ ७

आपकी कन्या को जैसे रुचिकर गहने हों,
फॉरेन की साड़ियों से घटिया न पहने वो ।
चंद चाँदी के हो बरतन साथ में, जता रहे ॥ ८ ॥

हमें तो ना कुछ भी चाहिए श्रीमान् जी,
आपके दामाद और कन्या का हो मान जी।
उनके अरमान पूरे करना बता रहे ॥ ९ ॥

धार्मिक परिवार कहाता हमारा है,
सादगी से होवे शादी संकल्प हमारा है,
सौदेबाजी ठहराव दिखावे का त्याग है ॥ १० ॥

बरातियों को यदि कुछ देना चाहें आप हैं,
धार्मिक पुस्तकें ही पकड़ा दो हाथ हैं।
"शांति" से सम्पन्न हो सब रीति और रिवाज हैं ॥ ११ ॥

दहेज प्रथा यह समाज को लगी हुई घुन है।

आम तौर पर देखा जाता है कि समाज के नेता, खुद को सुधारक कहने वाले लोग अंधेरे में पहले ही बड़ी रकम दहेज में हथिया लेते हैं और स्टेज पर दहेज विरोधी होने का स्वांग भरते हैं।

दहेज प्रथा पनपने में जितने वर पक्ष के लोग जिम्मेदार हैं, उतने ही वधू पक्ष के लोग भी है। बोलियां लगायी जाती है। वधू पक्ष की ओर से अपनी लड़की अमीर घरों में जावे, इसके लिए दहेज का लालच देकर अपना काम साध लेते हैं।

अब लड़कियां भी शिक्षित हो रही हैं। अपना भला बुरा सोच सकती है। हिम्मत के साथ सौ दौ सौ लड़कियां दहेज का विरोध कर लड़के वालों का भंडाफोड़ कर दें तो दहेज मांगने वालों को भी हादसा बैठ सकता है। 'गरीब का घर पसन्द करूंगी लेकिन दहेज मागने वाले के यहां सम्बन्ध

नहीं करूंगी।' लड़कियों के लिये यह प्रतिज्ञा, यह त्याग, करने का वक्त आ गया है। यहीं पर कमजोरी है। बातें सब करते हैं। त्याग करने की बात आयी कि कतरा जाते हैं।

दहेज की समस्या उग्र स्वरूप धारण करे उसके पहले ही सावधान हो जाना बुद्धिमानी है।

बन्धुओ! यह सामाजिक बुराई है किन्तु फैलती मानसिक कमजोरी से ही है। अतः आप इस स्थिति से उठकर जागरण की ओर बढ़ें। सुषुप्ति का त्याग करें और आत्म शांति प्राप्त करें।

धुलिया :
३० अप्रैल, १९८४



९

प्रदर्शन बनाम अहंकार

आत्मानन्द में रमण करे वही ज्ञानी है,
निज से निज को पाने वाला ध्यानी है ।

सद्ज्ञान सूर्य बन करके, जो ज्ञान किरण फैलाता,
निज ज्ञान प्रभा से जग का अज्ञान ध्वान्त मिटाता ।
वही महा ज्ञानी है, निज से........॥१॥

तज भेदभाव के पथ को समता का पाठ पढाता,
वैषम्य भाव की ज्वाला पर सुधा सलिल बरसाता ।
वही महा दानी है, निज से........॥२॥

सब विघ्न आपदाओं को, अपने तन-मन पर झेले,
दुख-दर्दी के घावों पर मरहम पट्टी बन फैले ।
वैद्य लासानी है, निज से........॥३॥

ये तेरे है ये मेरे, ये राग द्वेष के फेरे,
उपरत इनसे अन्तर मन, तज पंथ ग्रंथ के घेरे ।
वही गुण खानी है, निज से........॥४॥

वैराग्य रंग अनुरंजित तन मन सब जिसका पावन,
जग बीच रहे वो ऐसे जल कमल लगे मन भावन।

मुनि वह ज्ञानी है, निज से........॥५॥

दैविक सौन्दर्य हो सन्मुख मन किंचित् हो न विकारी,
सब जग वनिताएं जिसकी दृष्टि में प्रिय महतारी।

वही शुभ ध्यानी है निज से........॥६॥

निज अन्तर शोधन में ही संयुत जिसका पल प्रतिपल,
जो आत्म समाधि में यों रहता है सुदृढ़ अविचल।

'शांति' सेनानी है; निज से........॥७॥

ज्ञानी : एक परिभाषा :

गीतिका की पक्तियों में कुछ लाक्षणिक शब्दों की परिभाषाएं प्रस्तुत की गई है। कुछ शब्द ऐसे है जिन्हें हम निरन्तर सुनते रहते हैं, किन्तु उनकी परिभाषाओं पर, उनके गहनतम अर्थो पर हमारा ध्यान केन्द्रित नहीं होता। उन शब्दों में हमारे कुछ चिर परिचित शब्द है जिनका हमारी साधना से, हमारे व्यावहारिक जीवन से गहरा सम्बन्ध है। हम आत्म साधना, आत्म स्फूर्ति, आत्मानन्द आदि शब्दों का उच्चारण करते हैं, लेकिन गहनतम रूप में यह नहीं समझ पाते कि आत्मानन्द क्या है, आत्म शांति क्या है, आत्मिक आनन्द क्या। है गीतिका में इन शब्दों का सामान्य सा विश्लेषण है। ज्ञानी किसे कहा जाय, ध्यानी किसे कहा जाय ?

शास्त्रकारों ने ज्ञानी की परिभाषा दी है कि जिसकी चेतना सदा-सदा स्वयं में रमण करती है, जिसकी दशा सदा

स्वभाव में रहती है, उसे हम ज्ञानी या ध्यानी कह सकते हैं। व्यवहार में हम समझते हैं कि जिसने ३२ शास्त्रो को कण्ठस्थ कर लिया, जिसने आगमो का मन्थन कर लिया है, शब्दात्मक दृष्टि से किसी ने वेदान्त का अध्ययन कर लिया है वह ज्ञानी है। लेकिन वास्तव में ज्ञानी की परिभाषा इससे कुछ अलग हट कर है। आचारांग सूत्र में ज्ञानी–पण्डित की परिभाषा आई—महाप्रभु महावीर ने कहा "खणं जाणइ पण्डिए" पण्डित वह है, विद्वान् या ज्ञानी वह है जो क्षण को जान लेता है, क्षण को समझ लेता है।

हमारे जीवन के असंख्य क्षण व्यतीत होते जा रहे हैं। इन क्षणो का उपयोग हम किस दिशा में कर रहे है, यह बहुत विचारणीय विषय है। पण्डित की परिभाषा प्रभु ने की कि जो एक क्षण की कीमत को जान लेता है। पण्डित वही है जिसने समय का मूल्य समझ लिया। समय का मूल्य क्या आप ले सकेंगे ? एक क्षण कितना कीमती है, कितना मूल्यवान है यदि इस पर आप विचार करेंगे तो ज्ञात होगा कि ससार की सारी सम्पत्ति देकर भी एक क्षण को खरीद नही सकते। जो क्षण आपके व्यतीत हो गए। कल्पना करिए कि आप २७ वर्ष पूरे कर गये है। अब २७ वर्ष में से एक क्षण भी वापस खीचना चाहे, वापस प्राप्त करना चाहें तो क्या वापस प्राप्त कर सकेंगे ? २७ वर्ष व्यतीत हुए है उनमे से एक क्षण भी वापस नही आ सकता। संसार की समस्त सम्पदा इसके सामने रख दे लेकिन इस क्षण को लौटा नही सकते। इसलिए भगवान महावीर ने कहा—

जा जा वच्चइ रयणी न सा पडिनियत्तइ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राईओ॥

जो जो रात्रियां व्यतीत हुई हैं वे पुनः लौट कर नहीं आ सकतीं। और जो संसार के द्वंद्व में, बुरे आचरण में, रागद्वेष की परिणति में हमारी रात्रियें व्यतीत हो रही है उन्हें हम फिर प्राप्त नहीं कर सकते। वे निष्फल चली जा रही है। तो मूल बात है कि समय की कीमत जिसने समझ ली, समय का मूल्य जिसने जान लिया है, वही विद्वान् है, पण्डित है, वही ज्ञानी है चाहे उसने ३२ शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है, वेद-वेदान्त को नहीं पढ़ा है। लेकिन जीवन के एक-एक क्षण को जिसने पढ़ लिया है, उसका मूल्य आंक लिया है वह वास्तव में विद्वान् हैं—अन्तरंग दृष्टि से विद्वान है। बाहर की विद्वता अधिकांश तौर पर प्रदर्शन के काम आती है और अन्तर की विद्वता, जिसमे प्रदर्शन नही, दिखावा नही, द्वंद्व नहीं, ज्ञान के लिए होती है। जितनी-जितनी आत्म-चेतना अन्दर से विद्वान् बनेगी, जीवन का मूल्य सही अर्थ में समझेगी, उतनी-उतनी आनन्द की वृद्धि होती चली जायेगी।

समय का उपयोग :

हम जरा चिन्तन करें कि आज अधिकांशतः हमारे समय का उपयोग किस दिशा में हो रहा है। इतना बहुमूल्य जीवन, इतना बहुमूल्य समय हमारे हाथ में है, लेकिन हम समय को ऐसा जाया करते चले जा रहे है जैसे उसका कोई मूल्य ही नहीं है। एक-एक क्षण हमारा किन कार्यों में लग रहा है ? आप व्यापारी हैं। एक-एक पैसे का हिसाब लगाते हैं। अमुक वस्तु खरीदी उसमें कितना व्यय, कितना पैसा खर्च हुआ, सारा अकाउण्ट मिलायेंगे। लेकिन ज्ञानीजन कहते हैं

कि आप कभी बैठ कर अपने समय का अकाउण्ट भी मिला लिया करें—कितना समय या कितने क्षण प्रमाद में गये, कितने क्षण तक साधना में लगे रहे। कितने क्षण निन्दा विकथा में लगे रहे। तेरी-मेरी चर्या में कितना समय नष्ट किया। इतने समय की कीमत कितने रुपये, कितने पैसे हैं। हमने किन कार्यों में समय लगाया। अधिकांश व्यक्तियों के पास समय बहुत है लेकिन उस समय का सद्विनिमय नहीं है, सदुपयोग नही है। उसका विपरीत दिशा में उपयोग हो रहा है। घण्टे दो घण्टे का समय साधना के लिए निकालेगे लेकिन साधना बहुत कम करेगे। पर निन्दा, विकथा, तेरी-मेरी बातो में समय का उपयोग कर लेगे। ऐसा कुछ अभ्यास-सा हो गया है दूसरो को टटोलने का।

हम स्वयं में छिपी हुई बहुमूल्य निधि को नही टटोलते। बाहर में दूसरो को टटोलते हैं कि कौन कैसा है, क्या कर रहा है? जब समय और चिन्तन की शक्ति हमें मिली है स्वय को टटोलने के लिए, हमारे भीतर कितना शक्ति का स्रोत बह रहा है। कितनी शक्ति भीतर भरी है, हम उन्हे देख लें, जरा निरीक्षण कर ले। यदि एक बार आपकी दृष्टि अपने भीतरी चेतना पर चली गई, अन्दर देखना हो गया तो फिर बाहर देखने की आवश्यकता नही पड़ेगी। आपने अन्दर का आस्वादन ले लिया तो फिर बाहर की सारी चर्चा फीकी लगे—ऐसा अनुभव होगा। हमे कई बार ऐसा अनुभव होता है—जब हम बैठे है, आप लोग आकर पास में बैठते है, मै अपनी व्यक्तिगत बात बता रहा हूं, आप अपनी चर्चा प्रारम्भ करते है, चाहे सामाजिक हो, पारिवारिक हो, या अन्य किसी प्रकार की हो, एक व्यावहारिकता के नाते हमें सुननी पड़ती है,

लेकिन हमारी अन्तर चेतना यह स्पष्टतया हमें सचेत और सावधान करती है कि अन्तर की चर्चा को छोड़ कर कहाँ बाहर की चर्चा में जा रहा है। कहां बाहर के विषय-विवाद में उलझ रहा है।

आन्तरिक छवि :

आन्तरिक विषय की चर्चा में पहले रस नहीं आता, लेकिन यह सब तभी बन सकता है जब कि हम अन्दर का आस्वादन ले लें। हमें आन्तरिक शक्ति का, आन्तरिक आनन्द का रस आ जाय, एक बार भीतर की छवि हमारी दृष्टि में आ जाय—गीतिका की पंक्तियाँ हैं:—

छवि अन्तर की देखी जिसने, वह फिर बाहर क्या देखे,
अक्षय पर आखें हैं जिसकी, वह क्षण भंगुर को क्या देखे।
छवि अच्छी लगती बाहर की, जब तक अन्तर की नहीं देखी,
है अच्छी लगती पर घर की, जब तक निज घर की नहीं देखी।
जिसने चिन्मय घर को देखा, वह पत्थर घर को क्या देखे।।

अन्तर की छवि एक बार हमने देख ली, अन्तर का आस्वादन एक बार कर लिया, आत्मा की अनुभूति हो गई तो बाहर की चर्चा में रस नहीं आयेगा। लेकिन हम ऐसे अभ्यस्त हो गये हैं कि बाहर ही बाहर रस आता है। बाहर के पदार्थों में ही आनन्द मान रहे हैं। जिस ओर आज का दृष्टिकोण दौड़ रहा है उसे हम जीवन की विपरीत दृष्टि कह सकते हैं। आज अधिकांशतया उसी दृष्टि के पोषण में समय जा रहा है, शक्ति जा रही है। जीवन की बहुमूल्य घड़ियां व्यर्थ जा रही हैं। प्रभु ने कहा कि जो-जो क्षण बीत रहे हैं



वे वापिस लौट कर नहीं आ सकते। आपये ४०, ५० या ५५ साल पूरे कर लिये। फिर चाहें कि १८ साल का बन जाऊं तो जो क्षण चले गये, उनको फिर प्राप्त नही कर सकते। लेकिन इतना हिसाव लगा सकते है कि १८ से ५५ के हो गये, इस सारे समय का उपयोग हमने किस काम में किया। किस दिशा में समय चला गया है। उसका उपयोग कर्म बन्धन में किया, कर्म मुक्ति में किया या राग-द्वेष की वृद्धि में किया ? महर्षि व्यास ने कहा है—

नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।

इस संसार में मनुष्य से बढकर कोई श्रेष्ठ तत्व नहीं है। वह श्रेष्ठ तत्व आपके हाथ लगा है, उसका उपयोग किस रूप में करना है, आप चितन करे। बाजार में जाते हैं तुराई खरीदनी है तो उसका थोड़ा सा टुकडा तोड कर चखेंगे कि कही खारी या कड़वी तो नही है। आप कोई चीज लेंगे तो पहले दस जगह भाव पूछेगे। इस व्यावहारिक क्षेत्र में आप एक-एक पैसे का हिसाव लगाते है, लेकिन इस बहुमूल्य जीवन को ससार में कर्म बन्धन के लिए यों ही छोड दिया। कभी हिसाव लगाया और चितन किया कि हमारी चेतना का क्या हो रहा है ?

धर्म स्थान में आ रहे हैं, इस दृष्टि से यहा आते हैं कि हमें साधना करनी है। यहां आकर भी यदि फिजूल की चर्चा में व्यस्त रहे, तेरी-मेरी और राग-द्वेष के बधन में व्यस्त रहे तो आत्म-शुद्धि नही कर पायेंगे, कर्मो की निर्जरा नही कर पायेगे।

जीवन और प्रदर्शन :

आज हमारा जीवन प्रदर्शन हो गया है। अहं न जाने क्या-क्या प्रदर्शन कराता है। जीवन का अधिकांश व्यवहार प्रदर्शन का रहता है। आप घर में किस पोशाक में रहते है और बाहर कैसी पोशाक पहनते है, घर में लुंगी और बनियान पहन कर घूम रहे हैं या बैठे हुए हैं, चाहे वह फटा हुआ ही हो, लेकिन बाहर निकालेंगे तब सूट या सफारी या बढिया धोती और शर्ट पहन कर निकलेंगे। कपड़ा भी बहुमूल्य होगा। यदि बढ़िया कपड़ा पहनना अच्छी बात है, तो घर में भी बढ़िया कपड़ा क्यों नहीं पहनते? अच्छे कपड़ों का प्रदर्शन करके, दुनिया को दिखाना चाहते हैं कि हमारी ऐसी पहुंच है, प्रतिष्ठा है, बाजार में भी प्रतिष्ठा है। आज तो जीवन ही प्रदर्शन हो गया है। ऐसी स्थिति में आत्म शांति नहीं मिल सकती। पहले प्रदर्शन अधिक नही होता था। पहले दुकान के अन्दर माल रहता था। बाहर थोड़ी जगह रहती थी जहाँ बैठकर लेन-देन का व्यवहार होता था। लेकिन आज दुकान अन्दर से खाली है, बाहर फर्नीचर लग गया है, अन्दर चाहे बारदाना ही भरा हो। पहले अन्दर भरा रहता था और बाहर खाली रहता था। आज जीवन की दशा प्रदर्शन की बन गई है। इसका कारण है अहकार मेरे जैसा कोई दूसरा नहीं है। 'हम चौड़े सड़क सकडी' वाली स्थिति हो रही है। आज अहंकार सिर पर चढ़ कर नाच रहा है। ऐसे व्यक्ति विकास नहीं कर सकते।

शास्त्रकार कहते है कि जिस शिष्य को अहंकार आ गया कि मैं गुरु से भी बढ़ कर हो गया हूं। उसका विकास

रुक जाता है। जैसी गुरु शिष्य की बात है वैसी ही जीवन व्यवहार की बात है। जिस व्यक्ति के जीवन से अहंकार छूट गया वह आगे बढ सकता है। अहकार विकास की अर्गला है। मनुष्य सोचता है कि हम जैसे जमे हुए हैं वैसे ही जमे रहेंगे,दुनिया हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। दुनिया तो कुछ बिगाड़ सके या नही बिगाड़ सके लेकिन कभी ऐसा मौका भी आ सकता है जब बेटे भी घर से बाहर निकाल देते है। मैं आपको एक रूपक सुना देता हूं —

एक सशक्त चोट—सेठ के अहंकार पर :

एक सेठ बैठा है अपनी दुकान पर। मुनीम, नौकर-चाकर काम कर रहे हैं, कार्य चल रहा है। एक ८, ९ वर्ष का बालक परिस्थिति का मारा भिखारी बन गया। मा-बाप बचपन मे गुजर गये थे, कोई उसकी देख-रेख करने वाला नही था। रिश्तेदार, जितना पैसा था धीरे-धीरे चूस लेते है। वह खाली हाथ रह गया। खाने के लिए रोटी जुटाना मुश्किल हो गया, कुछ बचा नही। रिश्तेदारो ने बारी बाँधली कि एक-एक दिन आकर हर घर से भोजन माग लिया करे। एक रोज उस करोड़पति सेठ के यहाँ भोजन की बारी थी। वह सेठ की दुकान पर आकर कहने लगा कि सेठ साहब, रोटी दे दो' पैसा दे दो। सेठ ने देखा कि यह बच्चा कहाँ से आ गया। बच्चे ने फिर कहा कि आज आपकी बारी है इसलिए मै आया हूं, मुझे भूख लगी है, मुझे कुछ खाने के लिये दे दे दीजिये। सेठ ने उसकी बात सुनी नही। वह भी अच्छे घराने का बच्चा था, उसने स्वाभिमान से कहा सेठ साहब, आप नही दे सकते तो मेरी बात सुन लीजिये।

यदि नहीं सुनते हैं तो मैं समझूंगा कि आपके कान नहीं हैं। फिर भी सेठ उसकी बात नहीं सुनता। तब उस बालक ने कहा कि आप सुनते नहीं हैं। देखते नहीं है तो इतना तो बोल दीजिये कि मेरे यहां नही मिलेगा। यदि नहीं बोलते हैं तो मैं सोचूंगा कि आपके जीभ नहीं है। जो गरीब से मधुर शब्द नहीं बोल सके वह जीभ क्या काम की, जो झूठा प्रदर्शन करती है। ऐसे व्यक्ति क्या काम के, जो यह नहीं देखते कि हमारे पड़ोसी के बच्चे भूखे बैठे हैं या भूख से मर रहे हैं। ऐसे व्यक्तियों की प्रतिष्ठा कैसी, जो एक पैसा भी किसी गरीब भूखे को नहीं दे सकते। सेवा के कार्य में पैसे का सदुपयोग नहीं कर सकते।

वह बच्चा सेठ से कहता ही जा रहा था और सेठ सुन नहीं रहा था। एक फक्कड़ महात्मा बच्चे की बात सुन रहा था। उसने सोचा कि यह बच्चा कितनी देर से चिल्ला रहा है। रोटी-पैसा माँग रहा है और सेठ उसकी तरफ देख ही नहीं रहा हैं। उसने सेठ से कहा कि इस बच्चे की ओर देखो, यह कितनी देर से रोटी मांग रहा है और आप ध्यान ही नही दे रहे हो। सेठ ने कहा कि जा-जा सैकड़ों आते हैं, चोटी का पसीना एड़ी तक आता है तब पैसा कमाया जाता है, चल हट यहाँ से। यहां पर कुछ भी मिलने वाला नहीं है।

मनुष्य भूल जाता है कि यह जीवन एक झूले की तरह है। उसका पलड़ा कभी ऊपर जाता है और कभी नीचे आता है। ऊपर के पलड़े में बैठने वाला यह सोचे कि मैं ऊपर आ गया हूं, बाकी सब नीचे हैं, वह नीचे के पलड़े में बैठने वालों

पर मिट्टी फकने का प्रयत्न करे तो वह भूल जाता है कि नीचे का पलडा ऊपर आ रहा है और मेरा पलड़ा नीचे जा रहा। नीचे वाले जव ऊपर आयेगे तब हो सकता है कि तुमने उन पर मिट्टी फेकी तो वे ऊपर पहुंचने पर तुम पर थूक दे, तव क्या हालत होगी । व्यक्ति यह नही समझते कि हमारे जीवन में उतार-चढ़ाव आते रहते है ।

वच्चे के पास में खड़े वावाजी ने सेठ को, समझाया कि यह धन और वैभव आपके साथ जायेगा नही यह बच्चा वेचारा गरीव है, वहुत देर से आपसे दो पैसे मांग रहा है, इसको दे दीजिये । सेठ ने वावाजी से कहा कि तुम्हारे जैसे ५६ आते है । कमाना खाना तो आता नही और आ गये माँगने और वच्चे की हिमायत करने, जाओ यहा से, यहा कुछ नही मिलेगा । वावा ने बच्चे से कहा - "बेटा, यहा कहाँ आ गये मागने के लिए, यह इन्सान नही हैवान है ।" बच्चा वहा से चला गया । वावाजी भी अपने मठ में चले गये ।

वावाजी मठ में जाकर साधना करने के लिए बैठे, परन्तु उनका मन साधना में नही लगा । उन्होने सोचा कि सेठ का दिमाग ठीक करना पड़ेगा । बाबाजी ने सेठ की दिनचर्या का पता लगाया कि कब उठता है, क्या करता है, कहा आता है, कहा जाता है, कहा घूमता है । बाबाजी को पता लग गया कि सेठ प्रातः ४ बजे नदी पर जाता है और दो घण्टे वाद वापस आता है ।

वावाजी के पास विद्या थी वैक्रियलब्धि की । उससे वे जैसा चाहे वैसा रूप बना सकते थे। वावाजी ने छिप कर

देखा कि सेठजी नदी की ओर जा रहे हैं, सेठजी कुछ आगे निकल गये तब बाबाजी ने १० मिनिट में हूबहू सेठजी का रूप बना लिया और चले गये सेठजी के घर पर। लड़कों ने पूछा— "पिताजी, आज आप जल्दी कैसे आ गये?" बाबाजी ने कहा मैं नदी की तरफ जा रहा था तो मैंने देखा कि मेरे ही जैसा रूप बना कर कोई बहुरूपिया जा रहा है। मैंने सोचा कि यह अपने घर में घुस गया तो तुम लोग उसको पहचान नहीं पाओगे, इसलिए मैं जल्दी घर आ गया। बेटों ने कहा कि अपने यहां लेटरिन बाथरूम आदि की सब सुविधा है फिर भी आप निपटने के लिए बाहर पधारते है। सेठ ने कहा कि अब नहीं जाऊंगा।

पिता को धक्के पुत्रों द्वारा :

उधर असली सेठ नहा धोकर घर की ओर लौटा और घर में घुसने लगा। इधर बाबाजी रूपी सेठ ने इशारा किया बेटों को कि देखो इसने मेरे ही जैसा रूप बनाया है वह घर में घुस रहा था तो बेटों ने कहा कि कहां घुस रहे है? निकल यहां से। धक्के देकर उसको पीछे हटा दिया सेठजी कहने लगे कि तुम्हें क्या हो गया है? मुझे ही धक्के देकर बाहर निकाल रहे हो, मैं तुम्हारा पिता हूं। तुम्हारा दिमाग तो खराब नही हो गया है? लड़कों ने कहा कि तुम पिता बन कर कहां से आ गये हो? हमारे पिताजी तो सामने बैठे हैं। निकालो इसको बाहर। आवाज हुई तो लोग इकट्ठे हो गये। उन्होंनें लड़कों से कहा—"तुम तो विनीत लड़के हो, पिताजी के साथ कैसा व्यवहार कर कर रहे हो?" लड़कों ने कहा कि हमारे पिताजी तो घर के अन्दर बैठे है।

यह कोई बहुरूपिया है जो पिताजी की शक्ल बना कर आ गया है, फिर तो किसी ने मुक्का मारा, किसी ने जूता उठाया—पिता की पूजा होने लगी। असली पिता जो पिट रहा था किसी तरह से पिण्ड छुड़ा कर शहर के बाहर भाग गया। उसको बड़ा दुःख हुआ कि यह क्या हो गया, मेरे ही बेटों ने धक्के देकर बाहर निकाल दिया।

झूठा अहं :

कल तक मैं सोच रहा था कि मेरे पास क्या है और क्या नही। मैं अपने को धन कुबेर मान रहा था। और इठला रहा था कि—

बड़े भाग्य से मानव देह मिली है....
खा-खा योनियों को मार, जीव हुआ है लाचार
चोट सीने पे चौरासी लाख झिली है....बड़े भाग्य से....
मेरे बीस है दुकान, चार कारे, लोग मुझे मील मालिक पुकारें।
आठ ठेके हैं सरकारी, सात बेटे एक नारी, चार कुत्ते हैं
शिकारी एक बिल्ली है....बड़े भाग्य से..

सेठजी कल तक सोचते थे कि मेरे २० दुकानें हैं, चार कारें है, लोग मुझे मील मालिक सेठ साहब कहते हैं। मेरे पास किस बात की कमी है। जिधर आँख उठाता हूं उधर लोग खड़े हो जाते हैं, सब सुविधा है। सब कुछ मेरे पास है। लेकिन आज क्या हो गया, जीवन ऐसा बदल गया—

"धनवान होकर खूब इतराया, कहे मैंने दिमाग से कमाया,
उल्टी कर्मो की तस्वीर हो गये पूरे फकीर कहे हाय
तकदीर मेरी ढीली है।
बड़े भाग्य से मनुष्य देह मिली है।"

आज क्या दशा हो गई। धनवान होकर खूब इतराया। मैंने दिमाग से कमाया, कहां से कहां पहुंचा, मैंने यह किया वह किया लेकिन कर्मों की तस्वीर उलटते ही जीवन कहां से कहाँ चला जाता है। थोड़ा सा चूका कि नीचे उतर गया बेटों को पता नहीं था कि असली बाप यही है। इसलिए उन्होंने धक्के देकर बाहर निकाल दिया।

अन्त में वह सेठ वहां के राजा के पास पहुंचा। राजा ने सुबह ही सुबह नगर सेठ को देखा तो पूछा "कैसे आये?" उसने कहा "मेरे जैसा दुःखी कोई नहीं है।" राजा ने कहा- "सेठजी, तुम तो मेरे नगर की शान हो तुम दुःखी कैसे हो?"

बन्धुओ! जरा चिन्तन करो कि मन में सुखी हो य दुःखी हो। दिन में मुस्कराते हो लेकिन रात में नीद नही आती। यही सोचते रहते हो कि यह ऑफीसर आया वह आया, टैक्स वसूल करने वाला आया इनकम टैक्स वाल आया, कितना पैसा देना पड़ेगा। इसी चिन्ता के कारण नींद नहीं आती। इससे मनुष्य को शांति नहीं मिल सकती। शांति मिलेगी साधना करने वाले को, लेकिन इस ओर आपका ध्यान कहां है।

सेठ राजा से कहने लगा—मेरे जैसा दुःखी कोई नहीं है। मैं तो देख कर हैरान हो गया हूं। मैं प्रातःकाल निवृत होने और स्नान करने के लिए नदी पर गया था। पीछे से एक बहुरूपिया मेरे जैसा रूप बना कर आया और मेरे घर में घुस गया। बेटे उसको पहचान नहीं पाये, इसलिए उन्होंने उसको अपना पिता समझ लिया और बहुरूपिये के कहने से मुझे धक्के देकर बाहर निकाल दिया।

राजा ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया "उस बहुरूपिये को पकड़ कर ले आओ।" बाबाजी पहले ही से सोच रहे थे कि ऐसा होने वाला है इसलिए उन्होंने सेठ के बेटों को बुला कर कहा कि तुम्हारा बहुरूपिया पिता राजा के पास गया है और राजा हम लोगो को बुलायेगा। वहा कैसे पहचानोगे कि असली पिता मै हूं या वह बहुरूपिया है ? बेटों ने कहा "हम आपका हाथ पकड कर चलेगे।" "लेकिन राजा उलट-पुलट कर बैठा देगा फिर क्या करोगे ?" लड़कों ने कहा "आप ही बताइये कि क्या करना चाहिए ?" उसने कहा—"एक पुरानी वही लाओ, जिसमें शादी विवाह आदि के खर्च का हिसाब लिखा हुआ है। राजा के सामने खर्च का हिसाब पूछ लेगे और जो सही हिसाब बता देगा, उसी को असली पिता मान लेंगे।" लड़के बही निकाल कर लाये। उसने दो हिसाब छांट कर अच्छी तरह याद कर लिए।

राजा के यहां से बुलावा आने पर वह राज्य दरबार में गया, उसके बेटे भी साथ मे गये।

राजा ने लडकों से पूछा "बताओ तुम्हारा असली पिता कौन है ? पहले जो धोखा देकर आया वह बहुरूपिया है या बाद में आने वाला बहुरूपिया है ?" राजा ने दोनों को उलट-पुलट करके बिठा दिया। और बेटों से पूछा—"बताओ तुम्हारा असली पिता कौन सा है ?" बेटो ने कहा—"दोनों की शक्ल एक सी है इसलिए हम नही पहचान सकते कि असली कौन है और बहुरूपिया कौन है ? लेकिन हमारे घर के हिसाब-किताब की जो पुरानी बही है। उसमें हिसाब लिखे हुये है। उनमें से हम पूछते हैं वह हिसाब जो सही-सही

बता देगा वही हमारा असली पिता है।" राजा ने कहा—"हां यह ठीक है। पूछो इन दोनों से" लड़कों ने कहा—"आज से १० वर्ष पहले हमारे बड़े भैया की शादी हुई थी, उसमें कितना खर्चा हुआ ? असली सेठ को कहां याद था कि कितना खर्चा हुआ था, कौन याद रखे इस बात को ? सेठजी चक्कर में पड़ सये। बाबाजी ने कहा—मेरे बडे पुत्र की शादी में ५५५५७ रु० खर्च हुए थे, आप बही मंगवा कर देख लीजिये। लड़कों ने दूसरा सवाल किया—आज से बारह वर्ष पहले हमारा नया मकान बना था उस समय उसमें कितना खर्चा हुआ था ? बेचारे असली पिता को याद नहीं था कि कितना खर्चा हुआ था। नकली पिता—बाबाजी ने बता दिया कि उस मकान में ७०८५५ रु० खर्च हुये थे। बहीखाता मंगा कर देख लो। मेरे हाथ से खर्चा हुआ था इसलिये मुझे याद है। असली सेठ को राजा ने जेल में बन्द कर दिया और नकली सेठ—बाबाजी को घर भेज दिया। बाबाजी घर पहुंचने के बाद सोचने लगे कि मुझे तो ९९ के चक्कर में पड़ना नहीं है, अपने स्थान पर जाकर साधना करनी है। मुझे तो सेठजी को सबक सिखाना था इसलिए वैक्रिय लब्धि से उनके जैसा शरीर बना कर सिखा दिया है।

बाबाजी राजा के पास गये और कहा कि उस बहुरूपिये को मुझे सौप दीजिए, मैं उसको दूसरे रूप में सबक दूंगा। राजा ने सेठ को बाबाजी को सौप दिया। बाबाजी ने सेठ से कहा कि तुम स्वतन्त्र हो, जहां जाना चाहो जा सकते हो। सेठजी सोचने लगे कि कहां जाऊ? घर पर जाऊंगा तो लड़के धक्के देकर निकाल देगे। वह सोचने लगा कि

कल मैं अहंकार में झूम रहा था। उस बच्चे को दो पैसे देने को तैयार नहीं था और आज मेरी कैसी दशा हो रही है, अब मैं कहां जाऊ? आखिर में सोचा कि उन बाबाजी की शरण में जाना चाहिये जो मुझे दिशा दे रहे थे। बाबाजी तो पहले ही अपना असली रूप धारण करके अपने मठ में साधना करने के लिये चले गये थे।

सीख मिल गई :

बाबाजी के आश्रम पर जाकर उसने दंडवत किया और कहने लगा—"अब मै आपकी शरण मे आया हूं। अब मुझे यही रहना पड़ेगा, मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूं।" बाबाजी ने कहा—"तुम्हारे जैसा शिष्य मुझे नही चाहिए।" सेठ कहने लगा—"बाबाजी मेरी पूर्व की बातो पर ध्यान मत दीजिये। मैं पहले अह भाव में चल रहा था इसलिये मैने आपकी बात नही मानी और आपको और उस बच्चे को दुत्कार दिया था।" आखिर मे बाबाजी ने कहा—"अब तुम तुम्हारे घर जाओ। अब तुम्हारे लडके तुम्हे धक्का देकर घर से नही निकालेंगे। यह तो सब मेरी ही कला थी। मैंने तुम्हारी अक्ल ठिकाने पर लाने के लिए यह सब कुछ किया था। आयन्दा के लिए तुम गरीबों की सहायता करना।" वह सेठ अपने घर गया और आनन्द से रहने लगा। कुछ दिन बाद वह फिर बाबाजी के पास आया और कहने लगा—"मुझे अपनी आधी सम्पत्ति दान-पुण्य के लिए निकालनी है।" बाबाजी ने कहा—"तुम मर्जी आवे जैसा दान-पुण्य करो।"

जिस वैभव के पीछे और जिस सम्पत्ति के पीछे हम अहंकार में झूमते है वह कितने दिन टिकने वाला है, यह सोचने की बात है। कहावत है कि—

अपनी प्रिय वस्तु :

हम एक आत्मा को ठीक तरह से साध लें तो सब सध जायेगा ।

अकबर बादशाह के समय में आमेर के महाराजा मानसिंह के तीन महारानियां थीं । तीनों ही अलग-अलग स्वभाव की थी । एक बार महाराजा मानसिंह अकबर के दरबार में गये हुए थे । उधर मझली महारानी के पिताजी बीमार हो गये । मझली महारानी पिताजी से मिलने के लिए उनके घर पर चली गई । उधर महाराजा मानसिंह दरबार से लौट कर आये तो छोटी महारानी के महल में चले गये । वह चालाक थी । उसने महाराजा से कहा कि मझली महारानी आपकी आज्ञा के बिना पीयर चली गई थी । महाराज बहुत नाराज हुए और दूसरे दिन वे मझली महारानी के महल में आये और कहने लगे "तुम मेरी आज्ञा के बिना अपने पीयर कैसे चली गई ? तुम एक प्रिय वस्तु को साथ लेकर अभी मेरे राज्य से निकल जाओ ।" महारानी ने कहा "पहले मेरी बात तो सुनिए । मेरी बात सुने बिना ही मुझे निकलने के लिए कैसे कह रहे है ? मेरे पिताजी एक दम बीमार हो गये थे और आप यहाँ पर थे नही, तो मै आज्ञा किससे लेती ? मुझे क्षमा करिये ।" किन्तु राजा नशे में बेभान था, कुछ उत्तर दिये बिना पलंग पर गिर गया । रानी ने राजा को पलंग पर ठीक से सुला दिया और अपनी दासियों से कहा कि दो पालकियां तैयार करो । महारानी ने सोचा कि महाराजा ने मुझे घर से

निकाल दिया है इसलिए यहाँ से जाना ही पड़ेगा । उधर महाराजा शराब के नशे में बेभान पलंग पर सो रहे थे । महारानी ने दासियों की सहायता से महाराजा को एक पालकी में सुलाया और उसको लेकर अपने पिता के घर चली गई । पिता का घर थोड़ी ही दूरी पर था । वह राजा के साथ अपने पिता के घर पहुच गई । दूसरे दिन प्रातःकाल राजा होश में आया तो उसने पूछा "मुझे कौन ले आया यहां पर?" महारानी ने कहा, 'हुजूर, आपने ही कहा था—कि अपनी प्रिय वस्तु को लेकर चली जाओ । मुझे तो आप ही सबसे प्रिय लगते हो इसलिए मैं आपको लेकर यहां चली आई ।" आखिर में मानसिह ने अपने शब्द वापिस लिये और कहा—"तुम्हें देश निकाला नही दे सकता, तुम्हे वापस मेरे साथ महल में चलना पड़ेगा ।"

यदि हम अपनी प्रिय वस्तु आत्मा को पकड़ ले, हमारा लक्ष्य आत्म चितन की ओर मुड़ जाय, स्वय को देख लें तो हमारा जीवन कितना आनदमय हो सकता है । लेकिन हम बाहर की चीजो को देखते है इसलिए हमें शाति नही मिलती, आनन्द नही मिलता, सुविधा नहीं मिलती । पुरुष भौतिक सुख-सुविधा की ओर देखता है इसलिए उसको आत्म-शाति नही है, लेकिन आत्म-शांति नही है तो ये कुछ काम के नही है । स्वयं की चेतना पर ध्यान दे । हमारे अन्तरंग स्वर भीतर से उठेगे । आत्मा स्वय पुकारेगी कि तुम क्या कर रहे हो। लेकिन आत्मा की आवाज आपको सुनाई नही देती । आप आत्मा की आवाज को समझें और सोचे कि हमारा समय किधर जा रहा है ? कर्म बन्धन की ओर जा रहा

है या कर्म मुक्ति की ओर जा रहा है ? इन सब पर चिंतन-मनन करेंगे तो जीवन आनन्द की ओर गतिशील होगा ।

बोरीवली (पूर्व) बम्बई
६–८–८४

१०

शिक्षा का उद्देश्य-चारित्र निर्माण

जीवन का मूल :

बचपन अथवा विद्यार्थी जीवन हमारे जीवन का मूल है। कितना कोमल, कितना निर्मल है यह बचपन ! किन्तु यही कोमल जीवन हमारे नागरिकी जीवन की नींव है, वह एक फाउन्डेशन है। अगर यह फाउन्डेशन, यह नींव पक्की हो तो उसके ऊपर निर्मित जीवन का भवन पक्का रहेगा। इस नीव को, फाउन्डेशन को मजबूत करने के इस कार्य में विद्यार्थियों को खुद को भी उतना ही सक्रिय होना चाहिए जितना कि उनके माता-पिता और अध्यापकों को। विद्यार्थियों को अपने आपको कभी भी कमजोर नहीं समझना चाहिए। वह चाहे किसी भी परिस्थिति में हो उसे अपनी आर्थिक स्थिति में अथवा प्रतिभा के क्षेत्र में अपने आपको कमजोर नहीं समझना चाहिए। उसे हमेशा यही सोचना चाहिए कि वह अपने किए हुए संकल्प को पूरा करेगा, किसी भी क्षेत्र में जैसे भौतिकी तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में खुद को ऊंचा उठायेगा, महान् बनेगा।

सभी विद्यार्थियों की प्रतिभाएं एक जैसी नहीं होती। एक क्लास में बहुत इंटेलिजेन्ट लड़के भी होते है। और बहुत सारे ऐसे भी होते हैं, जिनकी प्रतिभा, स्मरण-शक्ति कुछ कम होती है। यह तो निसर्ग की देन है, उसने किसी को ज्यादा दी है, किसी को कम ! ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों को अपना धैर्य नहीं खोना चाहिए, प्रयत्न करने चाहिए ।

बच्चों को अच्छे कार्य में प्रोत्साहित करने का सबसे बड़ा दायित्व उनके माता-पिता तथा अध्यापकों का होता है। कभी भी उन्हें हीन शब्दों से संबोधित नहीं करना चाहिए। हम देखते हैं बहुत से माता-पिता अपने बच्चे को उसके वैसा न होते हुए भी, उसे बुद्धू तथा निठल्ला कहते हैं। उसके वैसा न होते हुए भी बुद्धू, निठल्ला इन शब्दों से उसे बुद्धू बनाया जाता है । उदाहरण के लिए हम थॉमस एडीसन की बात करेंगे। थॉमस एडीसन भी अपने विद्यार्थी जीवन में ऐसा ही एक सामान्य विद्यार्थी था। वह पढाई में हमेशा पीछे रहता था। एक कक्षा में चार-चार साल फेल होता था। सभी अध्यापक परेशान हो गए, यह लड़का आगे कैसे पढेगा ! उसके वर्ग शिक्षक ने उसे एक चिट्ठी लिखकर अपनी मां को देने के लिए कहा । वह चिट्ठी लेकर अपनी मां के पास गया। माँ ने चिट्ठी पढ़ी । उसमें लिखा था—"आपका बेटा बुद्धू है, वह आगे पढ़ नही सकता, उसे किसी भी काम में लगा दो।" उसकी माँ की आंखों से आसू आ गए । उसने अपने लाल को उठाया और सीने से लगा लिया और आत्म-विश्वास से कहा- "बेटा, यह दुनिया वाले तुझे भले ही बुद्धू समझें मगर मै वैसा नहीं समझती, तुझे मैं दुनिया का महान् आदमी बनाऊंगी।" तो प्रतिफल क्या हुआ, आप जानते हैं, थॉमस

एडीसन दुनिया का महान् वैज्ञानिक बना, जिसने विश्व को इलेक्ट्रीसिटी (विद्युत शक्ति) की देन दी। आज का सारा वैज्ञानिक-विकास इलेक्ट्रीसिटी पर टिका है। उसमें से इलेक्ट्रीसिटी को अलग कर दिया जाए तो सम्पूर्ण वैज्ञानिक विकास चरमरा कर ढह जाएगा।

संस्कृति शीर्षासन कर रही है :

तात्पर्य है कि माता-पिता को अपने पुत्र में ऐसी ही भावना भरनी चाहिए। उसे अच्छी तरह अपने कार्य में प्रोत्साहन देना चाहिए। हम देखते है—आज की शिक्षण पद्धति बहुत ही गिरती चली जा रही है। विद्यार्थी सिर्फ अपने दिए हुए ज्ञान को ग्रहण करने मे ही आत्म समाधान मानता है। शिक्षा किसे कहते है? यह वह नही जानता। शिक्षा ऐसी हो जिसमें विद्यार्थी सिर्फ अपने दिए हुए ज्ञान मे ही सतोप न मान कर, उस ज्ञान को अधिक वढा कर उसमें अधिक शोध कर सके। चाहे वह आध्यात्मिक ज्ञान हो या भौतिकी, उसमें उसे अधिक से अधिक शोध करना चाहिए। आज की शिक्षा में तो शोध तथा संशोधन की भावना ही विद्यार्थियों के दिल में नही दिखती। उसमें सिर्फ विद्यार्थी का ही दोष नही, दोप सारे समाज का है, अपनी शिक्षा पद्धति का है। यह कहा जाए तो चलेगा कि आज अपनी शिक्षा पद्धति शीर्षासन कर रही है। शीर्षासन का मतलब समझते हो ना! नीचे सर, ऊपर पाव। आप कहेंगे यह कैसे? किन्तु यह तथ्य है। पुराने जमाने में विद्यार्थियों में अपने गुरु के प्रति श्रद्धा होती थी। सभी विद्यार्थी अपने गुरु से विनय से पेश आते थे। उनको वडा मान देते थे। आज सब उल्टा है, आज स्कूलो कॉलेजों में प्रोफेसर, शिक्षक लोग खडे होकर पढाते है, और उनके

सामने विद्यार्थी पैर फैलाये, आराम से बड़े ठाठ से बैंचों पर बैठते हैं। यह हम सब पुराने जमाने से उल्टा व्यवहार देखते हैं, तो हमें कहना पड़ता है, हमारी संस्कृति शीर्षासन कर रही है। यह मेरा सिद्धांत नहीं है। यह बड़े-बड़े शिक्षा-शास्त्रियों का कहना है। अमरीका के शिक्षा-शास्त्रज्ञों का कहना है कि आज की शिक्षा पद्धति वहुत ही घिसी पिटी है।

हमारे यहाँ दस-बीस वर्ष पहले किए गए अनुसंधानों-आविष्कारों को बाद में कॉलेजों में पढाया जाता है। इससे हमारी शिक्षा पद्धति कितनी घिसी पीटी है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। आज हम देखते हैं, हमारे विद्यार्थियों को दी गई शिक्षा का व्यवहार में प्रायः कुछ भी उपयोग नहीं होता। हमारे यहां विद्यार्थियों को सिर्फ भूगोल, इतिहास, हिन्दी, विज्ञान, खगोल-शास्त्र पढा दिया जाता है, उसे जीवन-दर्शन नहीं पढाया जाता। उसे अपना चारित्र कैसे बनाना चाहिए, दुनिया में कैसा रहना चाहिए, यह नहीं समझाया जाता। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है, विद्यार्थी अपने आपको चारित्र्यवान बनाये। हम देखते हैं, अपना भारत राष्ट्रीय चारित्र्य की स्थिति में वहुत ही गिरता चला जा रहा है।

जिस देश के लोग चारित्र्यशील होते है, उस देश की ओर कोई भी देश आंख उठाकर नहीं देख सकता।

शिक्षा का उद्देश्य—चारित्र—निर्माण :

आज शिक्षा के मूल उद्देश्य-चारित्र-निर्माण की ओर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। बौद्धिक विकास की ओर आज की शिक्षा पद्धति ने बहुत ध्यान दिया और उस क्षेत्र में

विकास भी हुआ है, किन्तु बौद्धिक विकास के साथ तनाव भी बढ़ते जा रहे है। समस्याओं का जाल फैलता जा रहा है। हम देखते हैं, आज शिक्षण सस्थानों के समक्ष ही नही, समाज एवं अभिभावकों के समक्ष भी अनेक समस्याए खड़ी है। समाज की अपेक्षा है कि हमारे बच्चे चारित्र्यवान बने। अभिभावक चाहते हैं, हमारी सन्तान अनुशासनबद्ध हो। किन्तु समस्या यह है कि बालकों को चारित्र-निर्माण एवं अनुशासनबद्धता की शिक्षा कोई नही देता और अनुशासनबद्धता के अभाव में चारित्र-निर्माण, संयम एव सहिष्णुता का विकास कदापि नही हो सकता।

आज जो बालको में तोड़-फोड, हिसक उपद्रव एवं उद्दण्डता-उच्छृंखलता बढ़ रही है, इसका दोष क्या शिक्षा-पद्धति को नही दिया जा सकता है? बडे-बड़े शिक्षा-शास्त्री इस तथ्य को स्वीकार कर रहे है कि हमारी शिक्षा पद्धति में, हमारे पाठ्यक्रम में कही न कही दोप अवश्य है।

सन् १९६४-६६ मे विश्व ख्यातिप्राप्त शिक्षा-शास्त्री डॉ. डी. एस. कोठारी के निर्देशन मे भारतीय शिक्षा आयोग का गठन हुआ, जिसे कोठारो शिक्षा आयोग कहा गया था। उस शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन में बड़े-बड़े शिक्षा-शास्त्रियों ने यह स्वीकार किया कि—"A serious defect in School-Curriculum is the absence of provision for education in moral & spiritual values. In the life of the majority of Indians, religion is a great motivating force & is intimately bound up with the formation of character in the introduction of ethical values. A national system of education, that is related to the

life need & espirations of the pupil can not afford to ignore this purposal force." (Report–1964–65) "अर्थात् शालाओं के पाठ्यक्रमों का एक गंभीर दोष है। वह है नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा का प्रावधान न होना। अधिकांश भारतीयों के जीवन में धर्म एक प्रेरक शक्ति है और चारित्र्य निर्माण एव नैतिक मूल्यों के संचार से उसका सबध है। एक राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप में जो उसके निवासियों की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं से सम्बन्धित है। इस उद्देश्य पूर्ण प्रेरक तत्त्व (धर्म और अध्यात्म) की उपेक्षा नही की जा सकती।"

इस प्रकार आज की शिक्षा-पद्धति की सदोषता को शिक्षा-शास्त्री भी स्वीकार कर रहे है। किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि फिर भी इसमें सुधार-परिष्कार क्यों नहीं होता है। क्यों नहीं हमारे शिक्षा-शास्त्रियों का ध्यान इस ओर खिचता है? और जब तक हम अपने शिक्षा जगत् में एक सशक्त परिवर्तन नही करेंगे, उसके उद्देश्य के अनुरूप पाठ्यक्रम का निश्चय और तदनुरूप तकनीकी का विकास नहीं करेंगे, हमारे समक्ष युवा चेतनाओं से उद्भूत हजारों समस्याएं खड़ी रहेंगी।

आज विद्यालयों में जहां शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के समुचित साधन उपलब्ध होंगे, वहां शारीरिक व्यायाम का शिक्षण देने वाले अध्यापक होंगे, आसन कराने वाले मिलेंगे, और बौद्धिक विकास की प्रचुर सामग्री देने वाले शिक्षक उपलब्ध होंगे, किन्तु मानसिक विकास एवं भावात्मक विकास की शिक्षा देने वाले, चारित्र-निर्माण का धरातल प्रस्तुत करने वाले कितने शिक्षक मिलेंगे? न तो आज की सरकार इस

बात की चिन्ता करती है, न आज की शिक्षा प्रणाली में ऐसी कोई विद्या है जो इस अपेक्षा की पूर्ति कर सके।

विपरीत शिक्षा :

मै यह कहना चाह रहा हूं, कि शिक्षा का उद्देश्य है चारित्र-निर्माण। हमारा व्यक्तिगत चारित्र उन्नत हो। किन्तु इस ओर गति कहा हो रही है ? स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो हमारी गति ठीक विपरीत दिशा मे हो रही है। अपने बालको एव युवकों के समक्ष आज जो वायुमडल प्रस्तुत किया जा रहा है वह एकदम अश्लीलता से परिपूर्ण है। पिक्चर, साहित्य, पोस्टर्स सभी कुछ चारित्रहीनता के ही संस्कार प्रस्तुत कर रहे है। हम बीज बोते हैं—चारित्रिक पतन के और फल चाहते हैं, चारित्रिक निष्ठा के ! कितनी विपरीतिया है हमारे चिन्तन एवं आचरण में।

हम ब्रह्मचर्य की निष्ठा के सस्कार, सत्य आचरण का प्रोत्साहन अथवा नैतिक निष्ठा की ओर कितना ध्यान दे रहे हैं ? यह एक विचारणीय विन्दु है। आज हमारी शिक्षा पद्धति मे मौलिकता तो नाम शेष रह गई। चारों तरफ नकलीपन अधिक दिखाई देता है। जिसकी एक मिसाल आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूं।

नकली इन्सपेक्टर :

हमारी शिक्षा पद्धति कितनी दोषयुक्त है, कितनी नकली है यह एक उदाहरण से आपके सामने स्पष्ट करता हूं। एक शिक्षा विभाग का इन्स्पेक्टर है, वह किसी भी स्कूल में इन्सपेक्शन के लिए जाता है तो वह उस स्कूल की तरक्की ही चाहता है, वह कभी भी किसी शाला का रेप्युटेशन नही

बिगाड़ता। तो एक स्कूल में वह इन्स्पेक्शन के लिए जाता है। उसका इन्स्पेक्शन करने का एक अलग ढग है। वह स्कूल के एक क्लॉस के सबसे इन्टेलिजिएन्ट लड़के को सवाल पूछता है और उसके जवाब से पूरे विद्यार्थियों की स्थिति पर ग्रेड लगाता है। तो वह एक क्लॉस में जाता है और लड़कों से कहता है—"मै एक सवाल ब्लेकबोर्ड पर लिखता हूं, जो सबसे प्रतिभाशाली लड़का हो वह ब्लेकबोर्ड के पास आकर उस सवाल को हल करे।" एक नम्बर का यानी सबसे प्रथम लड़का ब्लेकबोर्ड के पास आता है और सवाल को हल करता है। बड़ा ही अच्छा जवाब वह देता है। उसके बाद दूसरे नम्बर के लड़के को वैसे ही करने के लिए कहा जाता है। वह लड़का भी अच्छा जवाब देता है। उसके बाद क्लॉस के तीसरे नम्बर के लड़के को बुलाया जाता है, तो पांच मिनट तक कोई भी नहीं आता है। तभी एक लड़का ब्लेकबोर्ड के पास आता है। इन्स्पेक्टर को थोड़ासा शक होता है और उससे वह पूछता है, "तू तो अभी पहला नम्बर का लड़का बनकर आया था और अभी वापस तीन नम्बर का बनकर आया है।" तो वह लड़का इन्स्पेक्टर को कहता है, माफ करना सर, मैं वही एक नम्बर वाला लड़का हूं, मगर तीन नम्बर वाला लड़का तो क्लॉस में नहीं है, वह बैडमिन्टन का मैच देखने के लिए बाहर गया है, और उसने उससे कहा—मैं उसके सभी कार्य संभालूं।" इन्स्पेक्टर को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उसने वहां खड़े हुए क्लॉस टीचर को धमकाया, 'तुम यहां मेरे सामने खड़े हो और यह लड़का तुम्हारे सामने मेरी आंखों में धूल झोंकने की कोशिश कर रहा है और तुम्हारा उसकी ओर ध्यान भी नही है।" तभी वह क्लॉसटीचर बोला, साहब,

माफ करना मैं क्लॉस के बच्चों को पहचाता नहीं।" इन्स्पेक्टर को बड़ा अचरच हुआ। वे बोले "क्या आप क्लॉस के बच्चों को पहचानते नही ? रोजाना बच्चों को पढ़ाते हो और उन्हें पहचानते तक नही।"

विद्यार्थी बन्धुओ। यही स्थिति आज की है। आज स्कूलों, कॉलेजो में विद्यार्थी और शिक्षकों का वह सम्बन्ध नहीं रहा जो पुराने जमाने में था। पुराने जमाने में तो गुरु और शिष्य का सम्बन्ध पिता और पुत्र के सम्बन्ध से बढकर माना जाता था। मगर आज वह सम्बन्ध नही रहा। आज अध्यापक सिर्फ विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं, उनको विद्यार्थियों से कोई आत्मीयता नही होती। कॉलेज में तो कोई किसी को पहचानता नहीं। वैसे ही सम्बन्ध ऊपर कथित कहानी में है। उस क्लॉस-टीचर के मुख से यह बात सुन कर इन्स्पेक्टर को बड़ा आश्चर्य होता है। इन्स्पेक्टर को बडा गुस्सा आता है, उसके पूछने के बाद शिक्षक सही-सही बात बताते है। "सर! माफ करना इस क्लॉस के क्लॉसटीचर तो इस समय यहां पर मौजूद नहीं है, वे बाहर बैडमिन्टन मैच देखने के लिए गये है। उन्होंने मुझ पर यहाँ का कार्य सौपा है।" तो इन्स्पेक्टर कहने लगते है, "ठीक है, ठीक है, मै कहां बही ओरीजिनल इन्स्पेक्टर हूं। वह इन्स्पेक्टर भी तो...............।"

तो बच्चो, तात्पर्य यह है, हमारा जीवन कितना नकली होता जा रहा है। शिक्षा जगत् में भी नकलियत आ रही है।

हमारा शिक्षा मंत्री :

यह सब दोष हमारी सामाजिक तथा राजकीय स्थिति का है। हमारी राजनीति ही ऐसी है, जिसमें सिर्फ राज रह

गया है और उसकी सब नीतियां, राजनेताओं ने प्रायः पैरों तले कुचल दी हैं। आज अध्यापकों के लिए तथा प्रोफेसरों के लिए ट्रेनिंग सेन्टर हैं, उन्हें पढ़ाने की ट्रेनिंग दी जाती है। मैं पूछता हूं—'आज कहीं शिक्षा मंत्री के लिए ट्रेनिग सेन्टर हैं ? उसे शिक्षा जगत के अभ्यास की कोई ट्रेनिग दी जाती हैं ? वह तो चुनाव में लोगों के द्वारा दिये हुए बहुमत के आधार पर शिक्षा मंत्री या अन्य किसी भी विभाग का मंत्री बन जाता है। भले, उस विषय का उसे ज्ञान भी न हो। आज आठवीं कक्षा में तीन बार फेल हुआ व्यक्ति भी शिक्षा मंत्री बन जाता है। वह कैसे इस शिक्षा पद्धति को सुधारेगा ? जो वित्त मंत्री ठीक से हिसाब करना भी नहीं जानता वह वित्त विभाग को कैसे संभालेगा ? इस रूप में कहा जा सकता है कि हमारा फाउन्डेशन ही गलत हो गया है।

जीवन एक ड्राइंग रूम :

हमारा जीवन एक ऊर्जा है—एक एनर्जी है या एक शक्ति है। इस ऊर्जा या शक्ति का उपयोग हम सृजन किवा निर्माण की दिशा में भी कर सकते हैं और विनाश तोड़-फोड़ की दिशा मे भी कर सकते है। हम जीवन को अच्छाइयों से भी भर सकते हैं और बुराइयों से भी।

जीवन में बहुत-सी अच्छाइयां भी अपनाई आ सकती हैं और बुराइयां भी। विद्यार्थियों को इसमें से किसे अपनाना चाहिए, यह एक दृष्टांत के रूप में आपके सामने रख रहा हूं।

एक सेठ के दो लड़के थे। सेठ बड़े ही धनवान थे। सेठजी ने दोनों बेटों के लिए लाखों रुपये खर्च करके अलग-अलग दो बंगले बनवा दिए। सेठजी की वृद्धावस्था आ गयी

थी। अपने बाद अपनी प्रतिष्ठा, अपना कार्यभार दोनों लड़कों में से किस पर सौंपा जाए, इस बात का निर्णय लेने के लिए उन्हें अपने दोनों लड़कों की परीक्षा लेनी थी। कौन-सा लड़का अधिक बुद्धिमान है, यह देखना था। इसलिए एक दिन सेठजी ने दोनों लड़कों को अपने पास बुलवाया और उन्हें पांच-पांच रुपये देकर कहा—"इस पैसे से किसी भी वस्तु को खरीद कर अपने-अपने बगले के ड्राइग रूम को पूरा भर दो।" दोनों लड़के पांच-पांच रुपये लेकर बाजार में घूमने लगे।

नगर की गन्दगी से हाल भरना :

बड़ा लड़का बहुत परेशान हो गया, उसे पांच रुपये में ऐसी वस्तु मिल ही नही रही थी, जिससे पूरा ड्राइग रूप भरा जा सके। वह सोचने लगा—जैसे-जैसे बुढापा आने लगा है, वैसे-वैसे पिताजी की बुद्धि गसियाती (सठियाती) जा रही है। उन्हे इतनी-सी भी अक्ल नहीं, इस महंगाई के युग में कभी पांच रुपये में पूरा हॉल भरा जा सकता है ? वह परेशान होकर बगले ये फाटक के पास खडा था, तो उसने देखा शहर की गदगी बाहर फेकने वाली एक म्युनिसिपैलिटी की गाड़ी उसी तरफ आ रही थी। बड़े लड़के के मन में विचार आया, पांच रुपये में भला इससे सस्ती चीज कौनसी मिलेगी ? मै इस कचरे से तथा गदगी से सारे हॉल को भर दूंगा। उसने उस गाडी के हरिजन-जमादार को बुलवाया और उससे कहा, "भाई, तुम यहां से दो किलोमीटर शहर के बाहर कचरा फेकने जाओगे, एक ट्रिप के लिए दो लिटर पेट्रोल लगेगा, अगर तुम मेरे घर मे चार-पॉच गाड़ी कचरा डाल दोगे तो तुम्हारा बीस लिटर पेट्रोल बच सकता है, और उसके साथ मै तुम्हे पांच रुपये भी दे दूंगा ? "जमादार ने सोचा सेठजी

सस्ते में कचरा खरीदना चाहते हैं, और इस कचरे का फर्टीलायजर (खाद) बनाना चाहते होंगे। उसने पूछा—"कहां डालना है, सेठजी ?" बड़े लड़के ने बंगले के ड्राइंग रूम की ओर इशारा किया। हरिजन तुरन्त बोला, "सेठजी, आप पागल तो नहीं हुए। लाखों रुपया खर्च कराकर इतना अच्छा बंगला बनवाया है और आप उसको इस गंदगी से खराब कर रहे हो।" लड़के ने जवाब दिया—"अरे ! मैं नहीं, मेरे पिताजी पागल हुए हैं।" फिर उस हरिजन ने चार-पांच ट्रक्स कचरा उस बंगले में डाल दिया। बड़ा बेटा सोचने लगा, चलो पिताजी का कहा हुआ काम पूरा हो गया, सिर्फ पांच रुपये में मैंने पूरा ड्राइंग रूम भर दिया, और वह अपने पिताजी के पास चल पड़ा। इधर उस कचरे की तथा गंदगी की दुर्गन्ध पूरी कॉलोनी में फैल गयी।

अगरबत्तियों की महक :

अब छोटा लड़का जो कि पांच रुपये लेकर बाजार में घूम रहा था। उसे भी ऐसी कोई वस्तु नहीं मिली जो पूरे होल को भर सके। वह परेशान होकर घूमता-घूमता एक मन्दिर के पास आया। मन्दिर में लगाई हुई अगरबत्तियों की सुगन्ध से पूरा मन्दिर भर गया था। दीपों की रोशनी से पूरा मन्दिर चमक रहा था। छोटे लड़के ने सोचा ड्राइंग रूम भरने के लिए इन चीजों से और कौन-सी अच्छी चीज हो सकती हैं ? उसने पांच रुपये में अगरबत्तियां और मोमबतियां खरीदीं और वह बगले पर आ गया। वहां आकर पूरे ड्राइंग-रूम में उसने अगरबत्तियां और मोमबत्तियां लगा दीं। उस अगरबत्तियों की सुवास से और मोमबत्तियों की रोशनी से पूरा ड्राइग रूम सुगन्धित हो गया। वह लड़का आनन्दित

होकर अपने पिताजी के पास गया । दोनों लड़कों ने अपने पिताजी को अपने-अपने बंगले पर चलने के लिए कहा । पहले सेठजी बड़े लड़के के बंगले पर गये । वहा जाते ही उन्हें दुर्गन्ध आने लगी । ड्राइंग रूम का दरवाजा खुलते ही दुर्गन्ध की एक भभकी सेठजी को आयी । सेठजी ने तुरन्त अपने नाक पर रुमाल लगा दिया । उन्होने बड़े लड़के से कहा—"अरे पागल ! यह तू ने क्या कर दिया ? मैंने इतना पैसा लगाकर इस बंगले को बनवाया-सजवाया और तुमने उसमे गन्दगी भर कर उसे गन्दा कर दिया ।" उस पर बड़े लड़के ने जवाब दिया, "पिताजी, आपने तो कहा था पाच रुपये में पूरा ड्राइंग रूम भर दो, तो मैंने पांच रुपये मे इसे भर दिया । वह तो अच्छा हुआ गाड़ी वाला हरिजन अच्छा था, जिसने पाच रुपये में इतना सारा कचरा ड्राइंग रूम मे भर दिया, वरना पाच रुपये में कही चीज मिलती है ?" सेठजी ने अपने सिर को हाथ लगा लिया और कहा, "जैसी तेरी बुद्धि वैसा तूने किया ।" अब वे छोटे लडके के बंगले पर पहुचे, बगले का फाटक खुलते ही चारो तरफ सुगन्ध ही सुगन्ध आ रही थी, ड्राइग रूम खोलते ही सुगन्ध की तीव्रता और बढ़ गयी । ड्राइंग हॉल का हर कोना-कोना सुगन्ध से भर गया था । चारों तरफ मोमबत्तियों की जगमगाहट से होल आलोकित हो रहा था । यह सब देख कर सेठजी बहुत प्रसन्न हुए, उन्होने छोटे लड़के से कहा, "मेरे दोनो लड़कों में एक तो बुद्धिमान है, जो जीवन को सुन्दर बनाने की कला जानता है ।"

इसका तात्पर्य यह हुआ—जिस तरह सेठजी ने दोनों लड़कों को पाच-पांच रुपये दिये थे उसी प्रकार प्रकृति ने हमें

पांच इन्द्रियां दी हैं और हमें कहा है, जाओ, इन पांच इन्द्रियों से अपने अन्दर की आत्मा को भर दो।

जिस प्रकार मूर्ख बड़े लड़के ने अपने सुन्दर बगले के ड्राइंग रूम में गन्दगी भर कर उसे गंदा कर दिया। उसी प्रकार कुछ मूर्ख लोग अपने इस शरीर के ड्राइग रूम को यानि आत्मा को गन्दगी से भरते हैं। और छोटे लड़के, जैसे बुद्धिमान लोग अपने इस शरीर के ड्राइंग रूम को यानि आत्मा को सुगन्ध से यानि अच्छे विचारों से भरते हैं।

बच्चों! हमें सदा यही प्रयत्न करना चाहिए कि सदा हम अपने शरीर का ड्राइंग रूम यानि आत्मा अच्छे विचारों से, ज्ञान से भर दें, ताकि हमारे अच्छे विचारो की सुगन्ध और ज्ञान के दीपों की रोशनी अपने जीवन में जगमगाती रहे। हमारी आत्मा का कोना-कोना अच्छे विचारों से, आचारों से, संस्कारों से, आलोकित हो।

मुझे आशा है, आप सभी अपने आत्मा रूपी ड्राइग रूम को सदा सुवासित रखेंगे, अपने ज्ञान के प्रकाश से जगत् के अन्धकार को उजाले से भर देगे और अपनी यशोकीर्ति के द्वारा चारित्र की सुवास से दिग्दिगन्त को महका देंगे और आगे बढ़ेंगे।

मैं चाहता हूं कि आज के विद्यार्थी अपने जीवन में ऐसे संकल्प ग्रहण करें कि उनके जीवन की पूरी ऊर्जा ऊर्ध्वमुखी बने और वे दुर्व्यसनों से बचे। जैसे—शराब नही पीना, धूम्रपान नहीं करना, माता-पिता एव गुरुजनों का अपमान नहीं करना, परीक्षा में नकल नही करना, गाली नही देना,